शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 16 अंक 90 (मूल क्रमांक 147)
जुलाई-अगस्त 2023 मूल्य: ₹ 50.00

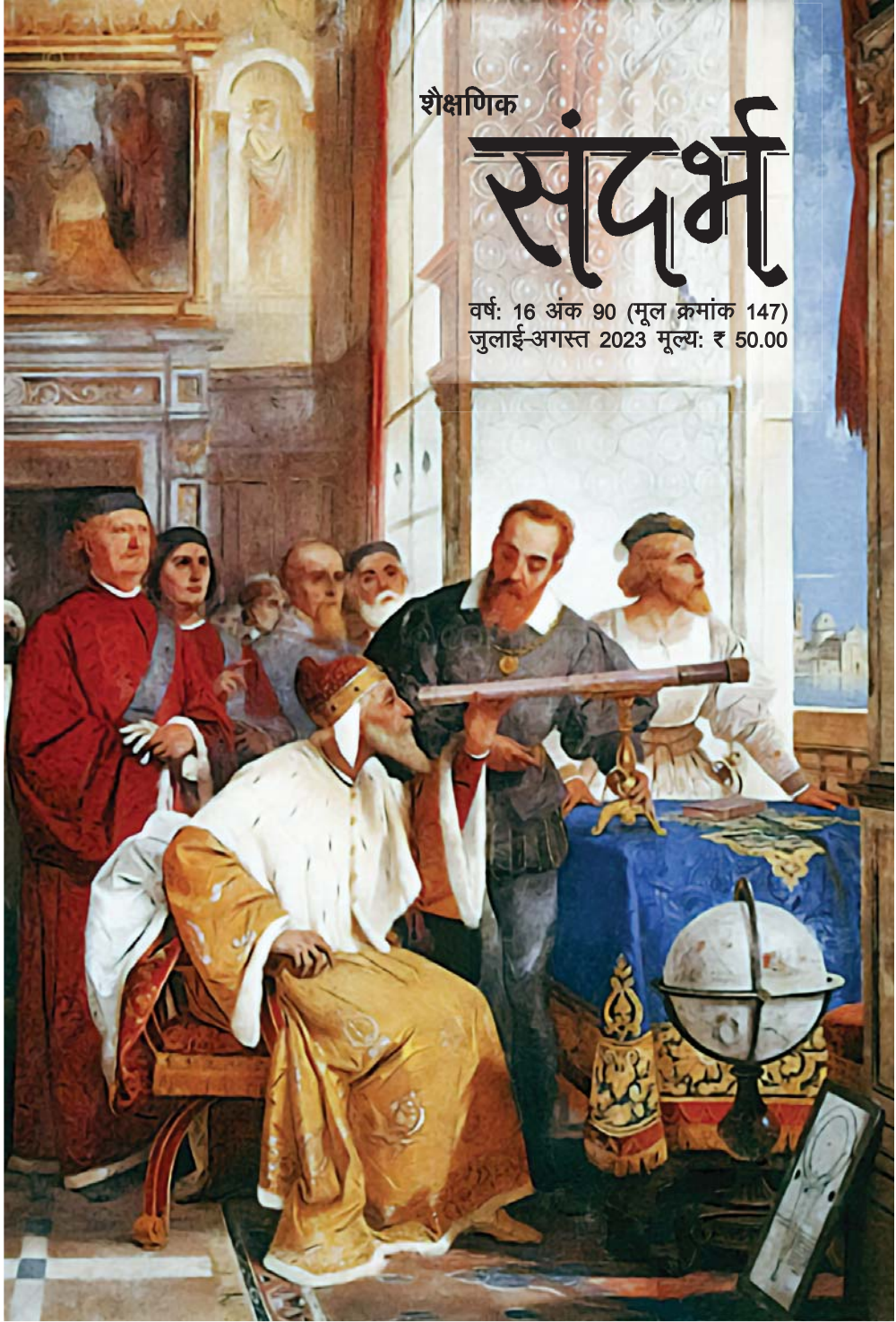

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

प्रबन्धकीय सह-सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग
हरिओम पाटिल
कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 16 अंक 90 (मूल क्रमांक 147)
जुलाई-अगस्त 2023

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: ज्युसेपे बेरतीनी द्वारा सन् 1858 में बनाए गए इस चित्र में गैलीलियो गैलिली वेनिस के डोज (वेनिस गणराज्य के मुख्य मजिस्ट्रेट और नेता) को टैलिस्कोप इस्तेमाल करना बताते हुए। कल्पना कीजिए, सत्रहवीं सदी के इटली में एक ऐसी वैज्ञानिक खोज करना जो धर्म की सत्ता और मान्यता के विरुद्ध जाती हो। इस (दु:)साहस के निहितार्थ गैलीलियो की कहानी में अच्छी तरह देखे जा सकते हैं। पढ़िए सत्य की तलाश के अपने पैमाने बनाने वाले इस जिज्ञासु और ज़िद्दी वैज्ञानिक की कहानी पृष्ठ 33 पर।

पिछला आवरण: पोखरामा फ़ाउण्डेशन अकैडमी के विद्यार्थी पेड़ पर चढ़ने का आनन्द उठाते हुए। शिक्षा की एक नई पहल छेड़ते इस समावेशी स्कूल को इन बच्चों की नज़र से देखना, इस स्कूल, गाँव और समाज के कई प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष पहलुओं को उजागर कर सकता है। ऐसी ही एक ज़बरदस्त कोशिश की है फ़राह फ़ारूक़ी ने, पृष्ठ 62 पर अपने लेख में। ग़ौर फ़रमाइए।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : Cover 1 - https://www.pinterest.dk/pin/5066618317177699/
Cover 3 - https://www.insider.com/why-mens-and-womens-shirts-button-on-different-sides-2016-11

Nature-Society Series

Jharkhand

Latest Publication

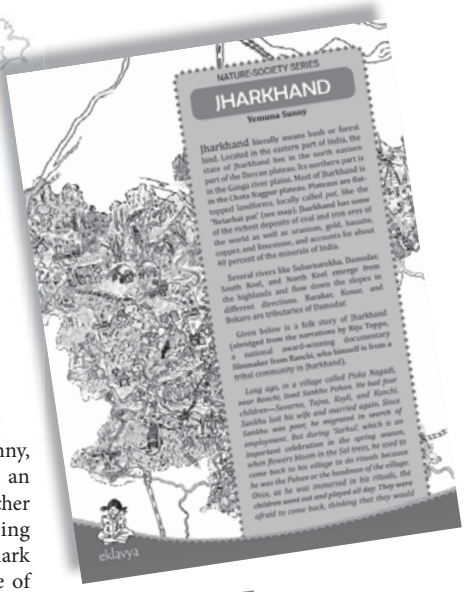

Price: ₹80

A collection of innovative maps by Yemuna Sunny, critical geographer and teacher, this series is an asset to geography classrooms, libraries, and teacher educational institutions, among others. Using beautiful, distinct icons, these maps clearly mark the physical spaces while conveying the type of human interactions with nature in each of them. The accompanying booklets provide information on the regions including their history, geographical features, environment, people, and intersections of each of these.

Practising and aspiring teachers, educators, learners of all ages, geographers, ecologists, and especially you, our dear reader, would enjoy learning about Jharkhand's unique ecology through this edition. It's a promise.

एकलव्य

To place the order -

Phone: +91 755 297 7770-71-72; Email: pitara@eklavya.in

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

आकाशीय पिण्डों की गति की व्याख्या: भाग 1

पृथ्वी गोल है। गोल ही है न? हम यह कैसे जानते हैं? अलबत्ता, इसे कई तरीकों से प्रमाणित किया जा चुका है। कैसा रहेगा यदि हम भी कुछ साधारण-सी गतिविधियों के ज़रिए इन विचारों और इनकी अवधारणाओं को न सिर्फ प्रमाणित कर सकें, बल्कि ज्ञान-निर्माण के सम्प्रेषण में भी उपयोग कर सकें? उमा सुधीर का यह लेख, खगोलशास्त्र की अवधारणाओं पर बात करते लेखों की शृंखला की पहली कड़ी है, जो न सिर्फ इन विचारों के इतिहास पर बात करता है, बल्कि इनकी समझ बनाने के लिए गतिविधियाँ भी साझा करता है।

14

असावधानी की समझ

सावधान! एक श्रेणी क्रम में दो बल्बों को जोड़ने पर एक बल्ब जल रहा था और एक नहीं। क्या कारण रहा होगा? एक प्रशिक्षण शिविर में विद्युत मोटर बनाने का एक प्रयोग कुछ यूँ असफल हुआ कि किसी भी समूह की विद्युत मोटर न घूमी। क्यों भला? किसी प्रयोग के सफल-असफल होने के पीछे 'असावधानी' कितना अहम किरदार निभाती है, इस पर उमेश चौहान का यह लेख बखूबी बात करता है।

43

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-90 (मूल अंक-147), जुलाई-अगस्त 2023

इस अंक में

05 | प्रयोग करके पौधों को जानें - एक कार्यशाला
किशोर पंवार

14 | आकाशीय पिण्डों की गति की व्याख्या: भाग 1
उमा सुधीर

25 | शिक्षक प्रशिक्षण
कालू राम शर्मा

33 | वह अब भी घुमतो है!
हरिशंकर परसाई

43 | असावधानी की समझ
उमेश चौहान

48 | क्या समुदाय और पालक सचमुच गैर-ज़िम्मेदार हैं?
यशोदा विश्वास

54 | वो बच्चे हैं, उन्हें बात करने दो
राजाबाबू ठाकुर

62 | एक नया विद्यालय, नई कोशिश - बच्चों की नज़र से
फ़राह फ़ारूक़ी

75 | जंगल का दाह
स्वयं प्रकाश

85 | पुरुषों के कुर्ते में बटन दाईं तरफ और महिलाओं में...?
सवालीराम

खेल खेल में गणित

इस किताब में विभिन्न गतिविधियों द्वारा प्रारम्भिक स्तर पर गणित की अवधारणाओं को समझाने व सुदृढ़ करने के लिए सुझाव दिए गए हैं।

यह कक्षा 1 व 2 के शिक्षकों के लिए एक उम्दा संसाधन सामग्री हो सकती है...

एकलव्य

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें...
पता - एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः +91 755 297 7770-71-72
वेबसाइटः www.eklavya.in; ईमेलः pitara@eklavya.in

प्रयोग करके पौधों को जानें एक कार्यशाला

किशोर पंवार

पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीव, चाहे वह पेड़ हो या जन्तु, सभी के जीवन की एक प्रमुख आवश्यकता है, भोजन। इसके बिना कोई भी जीव अपनी जैविक क्रियाएँ, मसलन श्वास लेना, चलना, प्रजनन आदि पूरी नहीं कर सकता। पौधों की भोजन सम्बन्धी क्रियाओं को समझने के लिए, पिछले साल एकलव्य फाउण्डेशन द्वारा जून महीने में आयोजित कार्यशाला में कुछ सत्र रखे गए थे। इसमें विभिन्न संस्थाओं-शालाओं एवं विविध शैक्षणिक पृष्ठभूमि के करीब 40 प्रशिक्षणार्थी शामिल हुए। इस प्रशिक्षण में कुछ प्रायोगिक कार्यों द्वारा पौधों में भोजन बनने की प्रक्रिया की विभिन्न ज़रूरतों को समझा और उसमें पत्तियों की भूमिका पर विशेष चर्चा हुई। हमने दस टोलियाँ बनाईं - कोशिश थी कि हरेक टोली में चार-पाँच प्रशिक्षणार्थी हों। टोलियों में काम कैसे करना है, काम का बँटवारा कैसे करना होता है, यह सब शुरुआत में समझाया गया।

शुरुआत में चर्चा हुई कि पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीव, चाहे पेड़-पौधे हों या अन्य जीव-जन्तु, सभी सूर्य पर आश्रित हैं, सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से। सभी जीव-जन्तुओं का दैनिक क्रियाकलाप सूर्य के उदय और अस्त होने से प्रभावित होता है।

पौधों का तो जीवन ही सूर्य के सहारे चलता है, उनका भोजन सूर्य के प्रकाश में ही बनता है। इसी सन्दर्भ में प्रतिभागियों से पूछा गया कि सूर्य के प्रकाश के अलावा और कौन-से कारक हैं जो इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए ज़रूरी हैं। जवाब मिला कि सूर्य के प्रकाश के साथ हवा और पानी की भी ज़रूरत होती है।

हमने इस पूरी प्रक्रिया को समझने के लिए कुछ सरल प्रयोग करना तय किया ताकि इसमें शामिल घटकों की भूमिका को प्रायोगिक तौर पर भी जाँचा और समझा जा सके। सबसे पहले पानी की भूमिका - वह पत्तियों तक कैसे पहुँचता है, इसे समझने के लिए एक प्रयोग किया गया। यह प्रयोग बाल वैज्ञानिक, कक्षा-7, 'पौधों में पोषण'* अध्याय में भी विस्तार से दिया गया है।

** आप इस पाठ को एकलव्य की वेबसाइट पर जाकर देख सकते हैं।*

प्रयोग-1: जड़ों से पत्तियों तक पानी का पहुँचना

इस प्रयोग को करने के लिए टोलियों से कहा गया कि वे दो-तीन छोटे पौधे, जैसे सदाबहार, गुलदाउदी, ट्रायडेक्स या ज़रबेरा आदि जड़-सहित ज़मीन से सावधानी से उखाड़ कर ले आएँ। इन पौधों को उखाड़ते समय यह सुनिश्चित कर लीजिए कि इन पर फूल खिले हों। जहाँ तक सम्भव हो सफेद फूल वाले पौधे चुनें। फिर इन पौधों की जड़ों को तुरन्त अच्छी तरह पानी से धो लें।

यदि किसी वजह से पौधे जड़-सहित न मिल पाएँ तो तने वाले हिस्से भी चलेंगे (यहाँ भी कोशिश कीजिए कि टहनी में फूल ज़रूर खिले हों और सफेद फूल हों तो बेहतर रहेगा) परन्तु उन्हें काटकर तुरन्त पानी में रख दो वरना टहनी की पत्तियाँ-फूल मुरझा जाएँगे। अब दो प्लास्टिक की खाली बोतल या दो काँच के गिलास में एक-चौथाई साफ पानी भरो, एक गिलास में लगभग 4 चम्मच लाल स्याही डालो। इन पौधों को दोनों गिलास में बाँट दो, ज़रूरत पड़े तो इन्हें सहारा देने के लिए प्लास्टिक की स्केल या छड़ी का उपयोग भी कर सकते हो। जिसमें केवल पानी और पौधे हैं, वह हमारा गिलास A है और जिसमें लाल स्याही है वह गिलास B. अब दोनों गिलास को पौधों सहित लगभग दो घण्टे के लिए खुले में रख दो। लेकिन ध्यान रहे उन पर तेज़ धूप न पड़े, नहीं तो वे मुरझा सकते हैं और ऐसे में हमारा प्रयोग सफल नहीं होगा। दो घण्टे बाद दोनों पौधों पर लगे सफेद रंग के फूलों को ध्यान से देखो।

क्या गिलास B में रखे सफेद रंग के फूल की पंखुड़ियों या पंखुडियों के

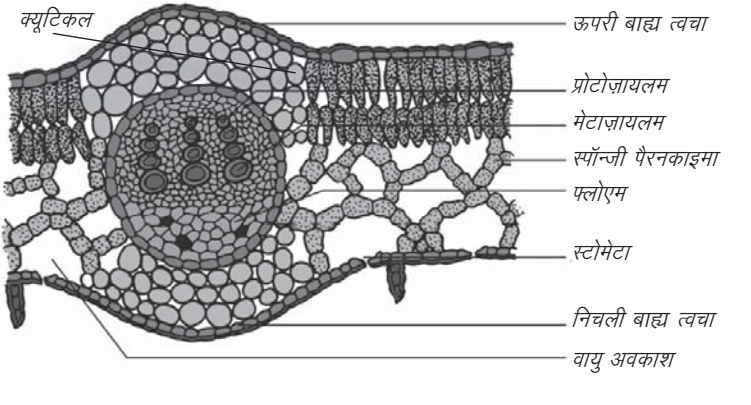

चित्र-1: *सूरजमुखी की पत्ती की आन्तरिक संरचना को दर्शाती हुई आड़ी काट।*

किनारों पर कुछ-कुछ लाल रंग दिखाई दिया? और गिलास A का फूल लाल क्यों नहीं हुआ?

प्रयोग के नतीजों को देखकर आपको समझ में आ ही गया होगा कि सफेद फूल का रंग लाल क्यों हो गया। प्रशिक्षणार्थियों ने बताया कि लाल रंग का पानी जड़ या तने से होता हुआ पत्तियों और फूल तक पहुँच गया। पानी तो गिलास A के पौधे में भी जड़ से ऊपर तने में चढ़ा है - तभी वह मुरझाया नहीं। लेकिन उस पानी में लाल रंग न होने से वह हमें दिखाई नहीं दिया।

प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के लिए इसी तरह से मिट्टी से पानी जड़ों की सहायता से तनों के माध्यम से होता हुआ पत्तियों तक पहुँचता है।

यह बात तो हुई पानी की लेकिन पत्तियों में हवा कैसे पहुँचती है? क्या वह अन्दर ही रहती है या उसके आने-जाने का भी कोई रास्ता है? इन बातों को समझने के लिए हमने कुछ और प्रयोग किए।

पत्तियाँ यूँ तो दिखने में ठोस नज़र आती हैं परन्तु वास्तव में उनके अन्दर भी हवा भरी होती है और उनमें वातावरण से हवा का आदान-प्रदान भी होता रहता है (चित्र-1)। आइए, पत्तियों में हवा की उपस्थिति का पता लगाने के लिए एक प्रयोग करते हैं।

चित्र-2: *अकेलीफा की पत्ती की निचली सतह से गर्म पानी में निकलते बुलबुले।*

फोटो: किशोर पंवार

प्रयोग-2: गर्म पानी में पत्तियों की सतह पर उठते बुलबुले

आसपास से दो-तीन तरह की पत्तियाँ तोड़कर उन्हें गर्म पानी से भरी एक तश्तरी में इस तरह डुबाया गया कि उनकी निचली सतह ऊपर की ओर रहे। ध्यान से देखने पर पत्ती की सतह से कहीं-कहीं बुलबुले बनते या निकलते नज़र आते हैं (चित्र-2)।

यही तो वे छिद्र हैं जहाँ से पत्ती की एयर-कैविटी में भरी हवा, गर्म पानी के कारण फैलकर बाहर

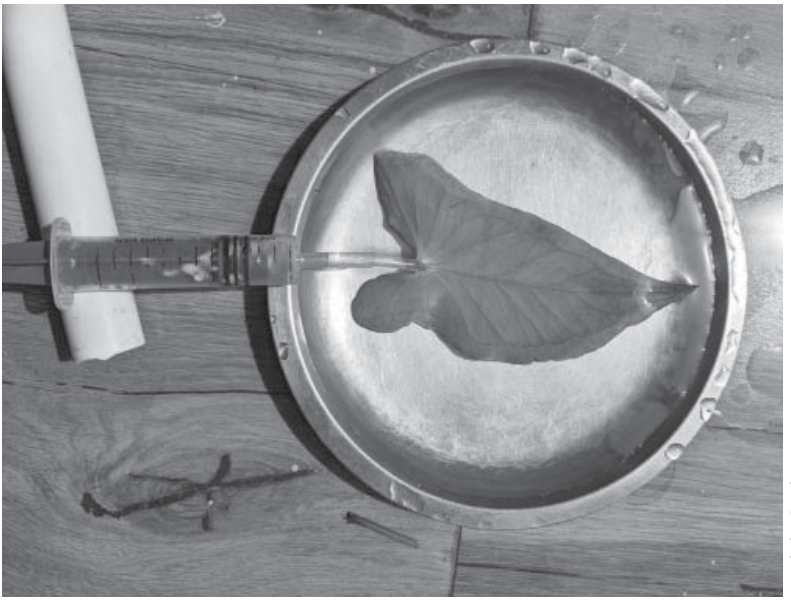

फ़ोटो: किशोर पंवार

चित्र-3: *पत्ती में छिद्र की उपस्थिति दिखाने का सेटअप।*

निकलती है। इन छिद्रों को स्टोमेटा कहते हैं।

प्रयोग 3: पत्ती की सतह से आते-जाते बुलबुले

यह देखने के लिए तुम्हें एक सिरिंज जिसकी सुई निकली हुई हो, एक पेट्री डिश या प्लेट, साइकिल की ट्यूब में लगने वाले रबर के वॉल्व का एक टुकड़ा तथा लम्बे डण्ठल वाली दो-तीन प्रकार की पत्तियाँ चाहिए होंगी।

किसी एक पत्ती को तोड़कर तुरन्त सिरिंज के आगे वाले हिस्से में सीधे या रबर के वॉल्व की सहायता से फँसा दो। अब पत्ती को पूरा-का-पूरा पानी में डुबोकर रखो (चित्र-3)।

फिर सिरिंज के पिस्टन को दबाओ। क्या तुम्हें पत्ती की सतह पर कहीं-कहीं बुलबुले बनते एवं निकलते दिखाई दिए? यदि बुलबुले दिखाई दे रहे हैं तो दरअसल यही वह जगह या छेद हैं जिन्हें पिछले प्रयोग में हमने स्टोमेटा के रूप में पहचाना था।

अब पिस्टन को वापस बाहर की ओर खींचो और देखो उन बुलबुलों का क्या हुआ। जहाँ से निकले थे, क्या वहीं वापस चले गए?

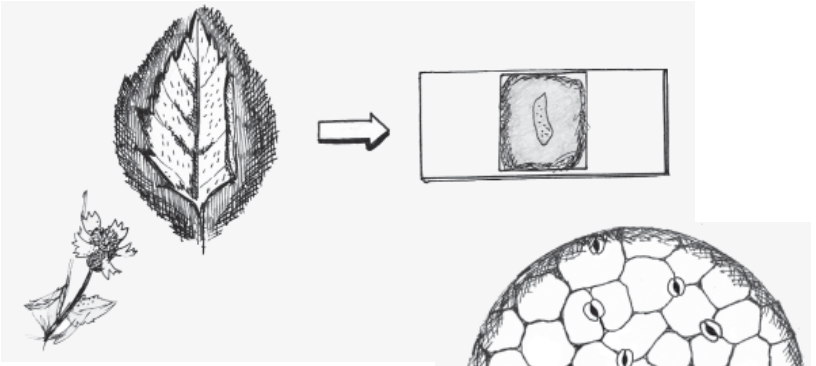

चित्र: बंसी

चित्र-4: पत्ती की झिल्ली पर स्टोमेटा।

प्रयोग-4: पत्तियों की झिल्ली पर स्टोमेटा

इसके लिए एक अच्छा संयुक्त सूक्ष्मदर्शी, सेफ्रेनिन तरल जैसी सामग्री के अलावा कुछ पत्तियाँ जैसे - सदाबहार, आँकड़ा, रियो या ट्रायडेक्स जैसी मांसल पत्ती चाहिए। इन पत्तियों को तेज़ी-से फाड़ने पर कुछ जगह पतली पारदर्शी झिल्ली नज़र आती है। यही वह झिल्ली है जिस पर स्टोमेटा होते हैं। इस झिल्ली का एक छोटा-सा टुकड़ा लेकर स्लाइड पर रखो। उस पर एक दो बून्द पानी और सेफ्रेनिन तरल की एक बून्द डालो। अब कवर स्लिप रखकर सूक्ष्मदर्शी के लो-पॉवर और फिर हाई-पॉवर में देखो। जो दिखाई देगा उसका एक चित्र बनाओ। कोशिकाओं के बीच में जो किडनी या सेम के बीज के आकार जैसी रचना दिखाई देती है, वही स्टोमेटा है (चित्र-4)। ये छिद्र खुलते और बन्द भी होते हैं। इन्हीं में से हवा का आदान-प्रदान होता है।

प्रशिक्षकों को अब तक की गई इन दो-तीन गतिविधियों से पौधों के भोजन निर्माण में हवा और पानी का महत्व तथा पत्तियों में हवा के आने-जाने के रास्ते तो पता चल चुके थे।

परन्तु बात तो सूरज की रोशनी को लेकर शुरू हुई थी। रोशनी की भूमिका जानने के लिए एक और मज़ेदार प्रयोग किया गया।

प्रयोग-5: रोशनी का कमाल और हवा के बुलबुले

इस प्रयोग को करने के लिए कम लम्बाई के दो छोटे गिलास या

पारदर्शी प्लास्टिक के डिस्पोज़ेबल कप चाहिए। इसके साथ ही पालक, मेथी, रियो या कमल, वॉटर लिली जैसी थोड़ी मांसल पत्तियाँ, पंचिंग मशीन और पाँच-दस मिलीलीटर वाली बिना सुई वाली सिरिंज। और थोड़ा-सा मीठा सोडा यानी सोडियम बायकार्बोनेट भी, जो रसोई में ही मिल जाएगा। फिर प्रयोग सिलसिलेवार इस तरह किया गया।

1. सबसे पहले पंचिंग मशीन से 20-25 पत्तियों की चकतियाँ (डिस्क) पंच करके काटकर तुरन्त ही पानी में डालना है। पानी में डालने पर ये तैरती हैं, पर हमें तो इन्हें पहले पानी में डुबाना है।
2. अतः इन्हें सिरिंज का पिस्टन निकालकर पिछले वाले हिस्से से उस पानी में डालना है जिसमें थोड़ा-सा सोडियम बायकार्बोनेट मिला हो।
3. फिर सिरिंज के मुँह पर जहाँ सुई लगाई जाती है, वहाँ पर अपनी उँगली रखकर पिस्टन को ताकत

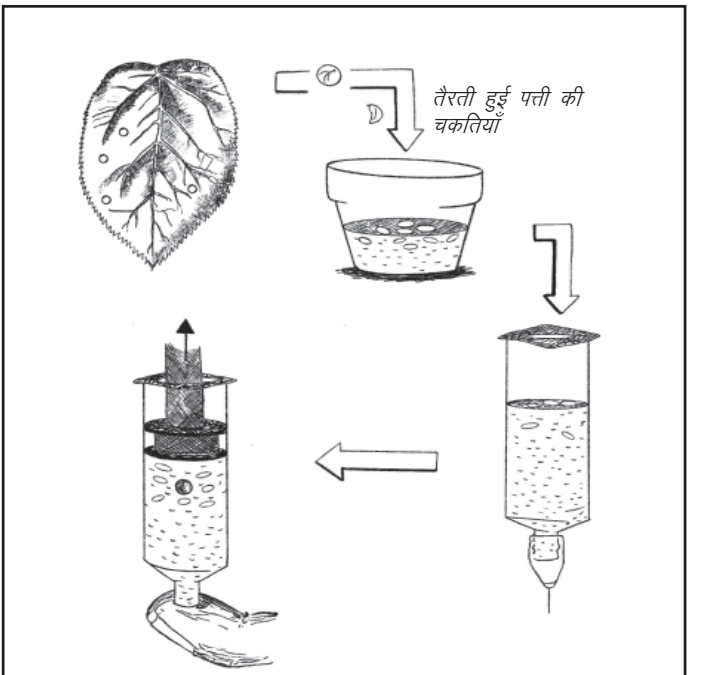

चित्र-5: *लीफ डिस्क में भरी हुई हवा को पिस्टन की सहायता से बाहर निकालने को दर्शाता चित्र। चित्र: बंसी*

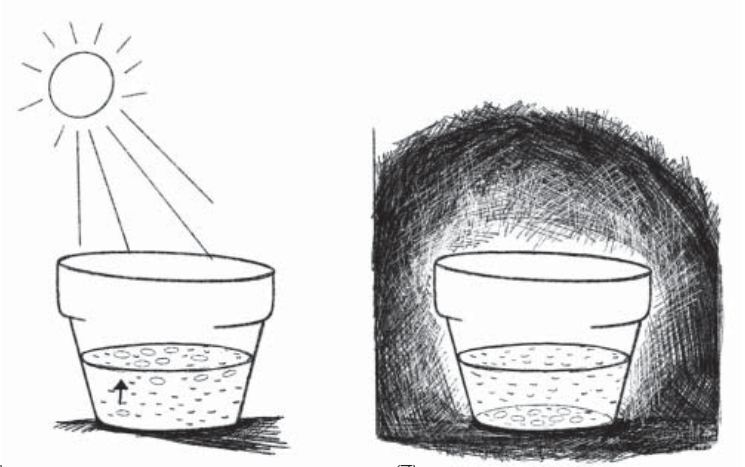

चित्र-6: *(अ) धूप में रखा हुआ कप; (ब) छाया में रखा हुआ कप। चित्र: बंसी*

से अपनी ओर खींचो, आपको पत्तियों की डिस्क से हवा के बुलबुले निकलते नज़र आएँगे (चित्र-5)।

4. यही वह हवा है जो पत्ती को गर्म पानी में डालने पर निकली थी। अपनी उँगली हटाकर पिस्टन को फिर ऊपर लाएँ जब तक पानी की एक-दो बून्दें बाहर न निकलने लगें।

5. अब फिर उँगली से पिस्टन को अपनी ओर ज़ोर-से खींचें।

   ऐसा तीन-चार बार करने से लगभग सभी डिस्क पानी में नीचे की ओर बैठ जाएँगी और पहले की तरह से सिरिंज बन्द करके सोडियम बायकार्बोनेट भी पत्तियों के अन्दर चला जाएगा।

6. अब पिस्टन को बाहर निकालकर इन लीफ डिस्क को 10-10 की संख्या में पानी भरे प्लास्टिक के पारदर्शी कप या काँच के गिलास में डाल दो।

7. आप देखेंगे कि सभी डिस्क तली में बैठ गई हैं। अब इनमें से एक कप को बाहर धूप में रख दो और दूसरे को वहीं पास में छाया में रहने दो।

8. ध्यान से देखो, किस कप की लीफ डिस्क धीरे-धीरे ऊपर उठ रही है। सूरज की रोशनी वाले कप की या छाया में रखे कप की (चित्र-6)?

यानी कि प्रकाश संश्लेषण अर्थात् भोजन निर्माण की क्रिया लीफ डिस्क को धूप में रखते ही शुरू हो जाती है।

इस क्रिया में निकलने वाली

ऑक्सीजन के बुलबुले बनने से पत्ती की डिस्क हल्की हो जाती हैं और ऊपर उठने लगती हैं।

जैसे ही पत्तियों पर धूप पड़ती है, उनमें भोजन बनना चालू हो जाता है। हवा, पानी और हरा पदार्थ तो पहले से ही उपलब्ध थे, बस धूप ही नहीं थी। धूप मिलते ही पत्तियों में भोजन बनने लगता है, जो शुरुआत में तो शर्करा के रूप में होता है परन्तु बाद में स्टार्च और अन्य पदार्थों में बदल जाता है। इस क्रिया में ऑक्सीजन के बुलबुले निकलना भोजन बनने की क्रिया के शुरू होने का प्रमाण है। यही वह ऑक्सीजन है जो अन्य सभी जीवों को ज़िन्दा रखती है। इसीलिए तो कहते हैं कि पेड़-पौधे हवा को शुद्ध करते हैं।

जीने के लिए सभी जीवों को भोजन चाहिए। कुछ जीव अपना भोजन खुद बना लेते हैं, उदाहरण के लिए विविध वनस्पतियाँ। और अन्य जीव इन वनस्पतियों या अन्य जीवों को अपना भोजन बनाते हैं।

* * *

आम तौर पर प्रशिक्षणों में जब भी पत्तियों को लेकर बातचीत होती है तो एक सवाल अवश्य पूछा जाता है कि हरे रंग के अलावा अन्य रंगीन पत्तियों (क्रोटन वगैरह) में क्लोरोफिल होता है या नहीं। सामान्यतः हमारा

लीफ डिस्क प्रयोग तालिका

	पत्ती का नाम	पत्ती को ऊपर आने में लगा समय (मिनट में)
1.	पालक	2-5
2.	बैगर्स बाउल	5-7
3.	ट्रेड्सकेंशिया (पर्पल हार्ट)	9-10
4.	कोलियस	3-4
5.	मनी प्लांट (हरा)	3-4
6.	मनी प्लांट (पीला-सफेद)	5-7

इस प्रयोग में पत्ती की चकती (डिस्क) को ऊपर आने में लगने वाला समय कई बातों पर निर्भर करता है जैसे पत्ती में क्लोरोफिल की मात्रा, डिस्क का वज़न, धूप की तेज़ी, कप में पानी की ऊँचाई, पानी में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा आदि।

जवाब होता है कि क्लोरोफिल तो ज़रूरी है, बिना इसके प्रकाश संश्लेषण कैसे होगा? पौधा बढ़ रहा है, इसका अर्थ है कि उसमें भोजन बनाने की प्रक्रिया अर्थात् प्रकाश संश्लेषण हो रहा है और आप तो यह जानते ही हैं कि इस क्रिया में हरे रंग का क्लोरोफिल तो निहायत ज़रूरी है ही। दूसरा और बेहतर जवाब यह होता था कि आप इन पत्तियों की क्रोमेटोग्राफी करके देखेंगे तो समझ आएगा कि क्लोरोफिल कम मात्रा में है, लेकिन है तो सही। अन्य रंगों की मौजूदगी की वजह से इन पौधों में वह हमें नज़र नहीं आता। क्लोरोफिल को क्रोमेटोग्राफी करके देखना आसान नहीं है, इसलिए कभी मुमकिन नहीं हो पाया।

इस सवाल का प्रायोगिक और ठोस जवाब हमें इस कार्यशाला में मिला जब 12 प्रशिक्षणार्थीयों ने मनी प्लांट की पत्तियों से प्रकाश संश्लेषण वाला प्रयोग किया। उन्होंने पत्तियों से हरी-पीली-सफेद चकतियों को काटा। फिर सोडियम बायकार्बोनेट वाले पानी के साथ इस प्रयोग को दोहराकर देखा गया। जब इन चकतियों को अलग-अलग करके धूप में रखा, तो शानदार नतीजे मिले और हमें बार-बार उठने वाले सवालों का जवाब मिल गया। मानी-प्लांट की पीली-सफेद चकतियाँ देर से ऊपर आईं, अर्थात् वे भी प्रकाश संश्लेषण का कार्य करती हैं, परन्तु कम मात्रा में। उनको ऊपर आने में हरी चकतियों की तुलना में लगभग दुगुना समय लगा। यानी कि हरी पत्तियों में तुलनात्मक रूप से क्लोरोफिल ज़्यादा मात्रा में होता है। मुझे लगता है कि अवधारणाओं को समझने और प्रयोगों को विविध तरह से डिज़ाइन करने के लिहाज़ से ऐसी कार्यशालाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उतना ही ज़रूरी है कि शिक्षक अपनी कक्षाओं में बच्चों को ऐसे प्रयोग करने के मौके दें।

किशोर पंवार: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में बीज तकनीकी विभाग के विभागाध्यक्ष और वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापक रहने के बाद सेवानिवृत्त। 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' से लम्बा जुड़ाव रहा है जिसके तहत *बाल वैज्ञानिक* के अध्यायों का लेखन और प्रशिक्षण देने का कार्य किया है। *एकलव्य* द्वारा जीवों के क्रियाकलापों पर आपकी तीन किताबें प्रकाशित। शौकिया फोटोग्राफर, लोक भाषा में विज्ञान लेखन व विज्ञान शिक्षण में रुचि।

आकाशीय पिण्डों की गति की व्याख्या

हम क्यों कहते हैं कि धरती एक गोला है जो हर 24 घण्टे में अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाता है?

उमा सुधीर

यह लेखों की एक शृंखला का पहला भाग है। इसमें कुछ ऐसी अवधारणाओं की बात की गई है जिन्हें प्राथमिक स्कूल में सतही तौर पर पढ़ा दिया जाता है। इस शृंखला के अन्त में हम इस बात पर विचार करेंगे कि इस विषय को प्राथमिक स्कूलों में शुरू करके वहीं पूरा कर देने में कितनी अक्लमन्दी है। ये अवधारणाएँ, दरअसल, उस प्रक्रिया की अद्‌भुत मिसाल हैं जिनके ज़रिए विज्ञान की दुनिया में ज्ञान का निर्माण होता है और उसका सत्यापन किया जाता है। मेरा प्रयास होगा कि न सिर्फ कुछ विस्तार में यह दर्शाऊँ कि ये विचार सामने कैसे आए, बल्कि कुछ गतिविधियाँ करने के अनुभव भी साझा करूँ जिनका उपयोग अध्ययनकर्ता (विद्यार्थियों) को ये विचार सम्प्रेषित करने हेतु किया जा सकता है। ये गतिविधियाँ कदापि मौलिक नहीं हैं; इन्हें विभिन्न स्रोतों से संकलित किया गया है।[1] अलबत्ता, इन्हें सीखने वालों के विभिन्न समूहों के साथ आज़माया ज़रूर गया है। सीखने वालों (विद्यार्थियों और शिक्षकों) को इन अवधारणाओं से जूझने का मौका देने के दौरान मैंने एक प्रमुख सबक यह सीखा है कि इन्हें आत्मसात करने में समय लगता है और सबसे बढ़िया यही होगा कि इन गतिविधियों को एक लम्बी अवधि के दौरान और बीच-बीच में ब्रेक देकर किया जाए। याद रखने की एक और बात यह है कि कई अन्य विषयों व विषय-क्षेत्रों की अवधारणाओं का उपयोग करना होगा। इसलिए कभी-कभी यह मानकर आगे बढ़ना ज़रूरी होगा कि वे अवधारणाएँ सीखी जा चुकी हैं। स्पायरेलिंग यानी किसी अवधारणा को आगे चलकर उच्चतर स्तर पर पुनः दोहराने की बातें तो बहुत की जाती हैं, लेकिन इन विचारों को लेकर दरअसल ऐसा किया बहुत कम जाता है। यहाँ उच्चतर कक्षाओं में शामिल किए गए कुछ बिन्दुओं का ज़िक्र ज़रूर किया जाएगा हालाँकि उनकी विस्तार में चर्चा नहीं की जाएगी।

[1] *प्रयोगों का एक स्रोत तो स्वाभाविक रूप से बाल वैज्ञानिक है। यदि सम्भव हो तो बाल वैज्ञानिक के विभिन्न संस्करणों के खगोल शास्त्र सम्बन्धी अध्यायों के समस्त प्रयोग करना उपयोगी होगा।*

मेरा तरीका हमेशा यह रहा है कि सूर्य-केन्द्रित मॉडल के दावों को व्यक्त कर दूँ और समूह से कहूँ कि वे मानकर चलें कि यह मॉडल सही है। सार रूप में यह पाठ्यपुस्तकों में दिए गए प्रमुख वक्तव्यों को दोहराने जैसा है –

1. गोलाकार पृथ्वी अपनी धुरी पर (यह धुरी 23.5° पर झुकी हुई है[2]) 24 घण्टे में एक घूर्णन करती है और सूर्य के इर्द-गिर्द वर्ष में एक बार परिक्रमा करती है;
2. चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, और चन्द्रमा की कलाएँ;
3. शेष सारे ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं;
4. सूर्य के इर्द-गिर्द पृथ्वी की परिक्रमा और साथ में उसकी धुरी का झुका होना, मिलकर पृथ्वी के अलग-अलग हिस्सों पर अलग-अलग मौसम पैदा करते हैं, और
5. पृथ्वी का घूर्णन सारे आकाशीय पिण्डों की आभासी गति (24 घण्टों में) का कारण है, सिवाय ध्रुव तारे के क्योंकि पृथ्वी की धुरी ध्रुव तारे की दिशा को इंगित करती है।

तत्पश्चात्, इस सत्र का लक्ष्य यह समझना हो जाता है कि क्यों इस नज़रिए को सही मान लिया गया।

मैंने पूरी बात को कई लेखों में इसलिए बाँटा है कि इतना कुछ कवर किया जाना है; लेकिन ये सारी अवधारणाएँ एक-दूसरे से जुड़ी हैं, इसलिए कई स्थानों पर मैं ऐसे विचारों की कड़ियों का ज़िक्र करूँगी, जिनकी विस्तृत चर्चा बाद में की जाएगी। ध्यान रखें कि अक्सर ये सवाल एक-साथ झुण्ड में उठेंगे, लेकिन हमें धैर्यपूर्वक एक-एक करके इन्हें सम्बोधित करना होगा।

यदि आप *बाल वैज्ञानिक* शृंखला के शुरुआती संस्करणों को देखेंगे, तो उनमें ऐसी गतिविधियाँ थीं, जिन्हें पूरे एक वर्ष की अवधि में किया जाना होता था। साल भर छायाओं (उनकी दिशा और लम्बाई) के अवलोकन, चन्द्रमा और उसकी कलाओं के अवलोकन नियमित रूप से लेना होते थे। आदर्श रूप में यह इस विषय को पढ़ाने का उपयुक्त तरीका होगा, लेकिन समय की दिक्कतों के चलते यह प्राय: कार्यशालाओं में भी सम्भव नहीं हो पाता। और उससे भी अहम बात यह है कि आजकल हरेक के हाथ में फोन और घर पर टीवी होने की वजह से अधिकांश लोगों ने देखा ही नहीं है कि आसमान में क्या हो रहा है।

क्या सचमुच पृथ्वी गोल है?

इस बात को लेकर बेशुमार अध्ययन हुए हैं कि बच्चों (और शायद वयस्कों तथा शिक्षकों में भी) पृथ्वी, और पृथ्वी के आसपास सूर्य, चन्द्रमा,

[2] *क्या हम कभी बात करते हैं कि इस कोण को किस आधार-रेखा से नापा जाता है?*

गोलाकार पृथ्वी का विचार प्रत्यक्ष अनुभव से कैसे मेल खाता है?

यह देखा गया है कि इसकी एक व्याख्या यह की जाती है कि हम एक खोखली, गोलाकार पृथ्वी के अन्दर रहते हैं और आकाश नाम का गुम्बद इसकी त्वचा है जिस पर सूर्य, चन्द्रमा वगैरह विचरते हैं। इस विचार को ललकारने का एक तरीका यह है कि उनसे पूछा जाए कि उन्होंने विभिन्न देशों में समय क्षेत्रों (टाइम ज़ोन्स) के बारे में क्या सुना है और यह उनकी 'विश्व-दृष्टि' में कैसे फिट बैठता है – जब सूर्य अस्त होता है, तो वह कहाँ चला जाता है और ऐसा कैसे होता है कि कैलिफोर्निया में देर शाम का समय होता है तब हम सुबह जाग ही रहे होते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे फौरन अपने विचार बदल लेंगे, लेकिन जब उन्हें दिखेगा कि उनका मनपसन्द मॉडल पर्याप्त नहीं है, तो हम एक नए खयाली मॉडल की ओर बढ़ सकेंगे।

तारों, ग्रहों की गतियों के बारे में कितने तरह के वैकल्पिक विचार हैं। *संदर्भ* में प्रकाशित रश्मि पालीवाल और यमुना सन्नी (*संदर्भ* अंक 1 व 2) तथा दीपक वर्मा (*संदर्भ* अंक 13) के लेखों में इन वैकल्पिक संकल्पनाओं का सार प्रस्तुत हुआ है। लेकिन विषय को शुरू करने से पहले बेहतर यह होगा कि प्रशिक्षणार्थी समूह से उभारने का प्रयास किया जाए कि वे क्या सोचते हैं। अधिकांश लोग पाठ्यपुस्तक के रटे-रटाए वक्तव्यों को दोहरा देंगे। लिहाज़ा, उनसे अपने मॉडल को विस्तार से समझाने को कहना होगा। फिर इन मॉडल्स के उर्ज़े-पुर्ज़े खोलकर देखना होगा ताकि वे यह देख पाएँ कि उनके खयाली मॉडल्स में क्या खामियाँ हैं। उसके बाद हम वर्तमान में स्वीकृत गोलाकार पृथ्वी के मॉडल की ओर कैसे आगे बढ़ें?[3]

एक गोले के रूप में पृथ्वी

गतिविधि 1: कल्पना कीजिए कि हम एक फुटबॉल पर खड़े हैं। ऐसे में क्या हम गेंद की गोलाई को देख पाएँगे? अब कल्पना कीजिए कि हम एक ऐसी गेंद पर खड़े हैं जिसकी त्रिज्या 1 मीटर है। क्या इस बार भी हम गेंद की वक्रता को देख पाएँगे? क्या इस मामले में वक्रता उतनी ही होगी जितनी फुटबॉल पर खड़े होकर दिखी थी? कल्पना कीजिए कि आप क्रमशः बड़ी गेंदों पर खड़े होते हैं – कमरे की साइज़ की गेंद, किसी इमारत की साइज़ की गेंद, गाँव या मोहल्ले की साइज़ की गेंद। समूह आसानी-से ताड़ लेगा कि गोले की साइज़ बढ़ने के साथ-साथ वक्रता कम होती जाएगी (चित्र-1)।

अर्थात् हम किसी आसान या प्रत्यक्ष अवलोकन की मदद से यह

[3] *पृथ्वी एकदम गोल नहीं है, लेकिन वह बात हम कभी और करेंगे। आइज़ैक एसिमोव का लेख (गलत, यानी कितना गलत?, संदर्भ अंक 84) एक उम्दा संसाधन है।*

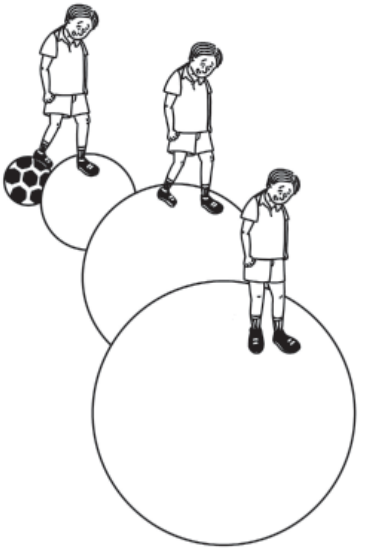

चित्र: पूजा मैनन

चित्र-1: *जब त्रिज्या बढ़ती है तो हमें गेंद की गोलाई कम होते दिखेगी।*

नहीं देख पाते हैं कि पृथ्वी एक गोला है। तो फिर वह क्या बात थी जिसने इस विचार को जन्म दिया? यूनानी विचार बताते हैं कि दो तरह के अवलोकनों के मिले-जुले उपयोग से हमारे रोज़मर्रा के अनुभव की चपटी पृथ्वी की बजाय गोलाकार धरती की बात को स्थापित किया था। आज हमारे पास कई अन्य प्रमाण हैं, लेकिन उनमें जाने से पहले हम कुछ ऐसे विचारों को देखेंगे जो आसान पहुँच में हैं।[4]

पहला, यूनान एक समुद्र-यात्री राष्ट्र था जिसमें कई द्वीप और मुहाने थे। लिहाज़ा, यूनानियों ने देखा था कि जब कोई जहाज़ दूर जाता है, तो उसके डेक्स पहले ओझल हो जाते हैं जबकि मस्तूल काफी देर तक दिखते रहते हैं। और जहाज़ किसी भी दिशा में जा रहा हो, स्थिति यही रहती थी। दूसरी ओर, यदि आप जहाज़ पर सवार हैं, तो धरती (किनारा या तट) का पहला संकेत ऊँचे पहाड़ होते थे, तट और बन्दरगाह काफी बाद में नज़र आने लगते थे।[5] यदि पृथ्वी को चपटा माना जाए, तो इस अवलोकन की व्याख्या नहीं की जा सकती क्योंकि यदि कोई बाधा न हो, तो हमें किसी ढाँचे का शिखर और आधार एक-साथ देखने से रोकने वाला कोई नहीं है। लिहाज़ा, इन अवलोकनों की व्याख्या के लिए पृथ्वी की वक्रता की मदद ली गई। इतना ही नहीं, यदि

---

[4] *इस सारे प्राचीन ज्ञान का श्रेय यूनानियों को देना उचित नहीं लगता। अधिकांश प्राचीन संस्कृतियों ने आकाशीय पिण्डों की गतियों को लेकर विस्तृत विवरण विकसित किए थे और यह भी प्रयास किए कि ग्रहण जैसी विशेष घटनाओं की भविष्यवाणी कैसे की जाए। यह संयोग की बात है कि यूनानी विचारों को लिपिबद्ध किया गया और विभिन्न मार्गों से संचारित किया गया। इसी वजह से ये आधुनिक समझ के विकास का आधार बने। इसीलिए मैं प्रमुखतः उनके विवरणों पर आश्रित हूँ।*

[5] *यह बात उस स्थिति से एकदम अलग थी, जब आप आसमान को देखें। जब आप पूर्व या पश्चिम की ओर यात्रा करते, तो तारों की स्थिति में कोई आभासी परिवर्तन नहीं होता था; लेकिन उत्तर या दक्षिण दिशा में यात्रा करते हुए तारे विपरीत दिशा में सरकते प्रतीत होते थे। अर्थात्, यदि आप दक्षिण की ओर काफी दूर निकल जाएँ, तो जो तारे आपके गृहनगर में सिर के ऊपर थे, वे उत्तर की ओर खिसकते जाएँगे। इसके बारे में अगले लेखों में और बात करेंगे।*

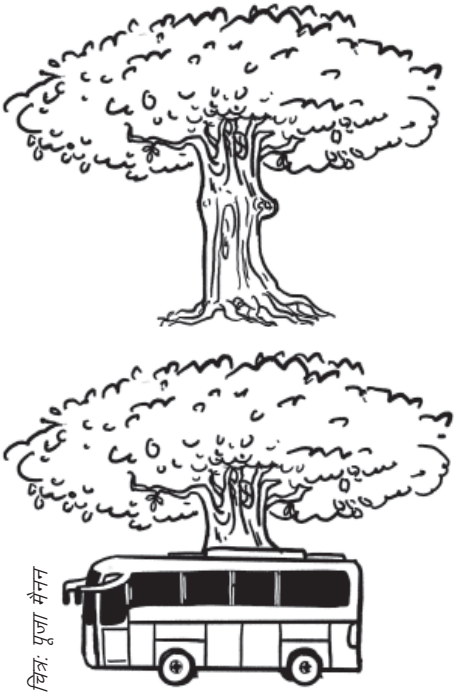

चित्र: पूजा मैनन

चित्र-2: *जब बस पेड़ के सामने है तो हमें पेड़ की सिर्फ ऊपर की टहनियाँ दिखती हैं, और नीचे का हिस्सा छुपाने वाली बस भी नज़र आती है। लेकिन जब क्षितिज पर पहाड़ का ऊपरी हिस्सा दिखता है तब नीचे का हिस्सा छुपाने का काम पृथ्वी की गोलाई करती है।*

हम क्षितिज को बगैर किसी रुकावट के देख पाएँ, तो यह क्षितिज एक वृत्त होता है (यह अवलोकन हम मैदानी इलाकों में कर सकते हैं, यदि हम किसी खेत के बीच में खड़े हों, और आसपास कोई पेड़ और इमारत न हो)।

दृष्टि में रुकावट न होने की स्थिति के मामले में समुद्र से बेहतर कौन-सी जगह होगी (या कोई विशाल झील या ब्रह्मपुत्र जैसे चौड़ी नदी)। लेकिन धरती पर यात्रा करते हुए भी ऐसे अवलोकन सम्भव हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम पहाड़ों की ओर (खास तौर से हिमालय की ओर) यात्रा करें तो हमें तराइयों से पहले पर्वत श्रृंखलाएँ दिखने लगती हैं (चित्र-2)। या यदि हम किसी शहर की ओर जाएँ, तो ऊँची-ऊँची इमारतें काफी दूर से ही दिखने लगती हैं। यदि आप देवास जाएँगे तो काफी दूर रहते ही आपको देवी की पहाड़ी दिखने लगेगी और आप सामान समेटकर उतरने की तैयारी करने लगेंगे।

दूसरा, सैकड़ों वर्षों तक चन्द्र ग्रहण के अनगिनत अवलोकनों से यूनानियों ने न सिर्फ यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि ये ग्रहण चांद की सतह पर पृथ्वी की छाया[6] पड़ने के कारण होते हैं बल्कि यह भी समझ लिया था कि चूँकि यह छाया सदैव एक वृत्त का चाप होती है, इसलिए लाज़मी है कि पृथ्वी एक गोला है। यहाँ, ज्यामिति में उनका बेहतर ज्ञान काम में आया क्योंकि वे जानते थे कि गोला ही एकमात्र ठोस आकार है जिसकी परछाई हमेशा एक वृत्त या वृत्त का अंश होती है। वस्तु पर प्रकाश चाहे जिस दिशा से पड़े और पर्दे को किसी भी कोण पर

[6] *सूर्य व चन्द्र, दोनों ग्रहणों की बात आगे किसी लेख में की जाएगी।*

रखा जाए (अर्थात् चाहे वह प्रकाश की किरणों से एकदम लम्बवत न हो तब भी), स्थिति यही रहेगी।

गतिविधि 2: सूर्य के प्रकाश या टॉर्च की मदद से विभिन्न वस्तुओं द्वारा बनी परछाइयों के साथ प्रयोग करें। प्रत्येक वस्तु को घुमाकर देखें कि परछाई की आकृति पर क्या असर होता है। आसानी-से देखा जा सकता है कि किसी तश्तरी को घुमाया जाए तो उसकी परछाई एक पूरे वृत्त से बदलते-बदलते एक मोटी रेखा हो जाती है। दूसरी ओर, गेंद के मामले में परछाई की आकृति बिलकुल नहीं बदलती (चित्र-3)। यदि एक ऐसी गेंद का उपयोग किया जाए जिसमें एक ताड़ी घुसा दी गई हो, तो उसे आसानी-से घुमाकर परछाई को साफ तौर पर देखा जा सकेगा। हाथों से गेंद को घुमाएँ तो हाथ की वजह से परछाई देखने में बाधा आती है।

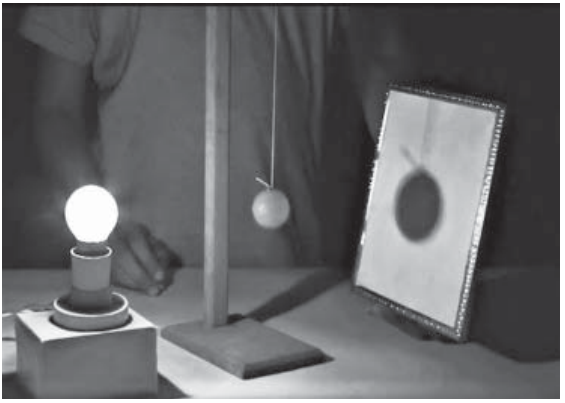

चित्र इंटरनेट से साभार।

चित्र-3: *सिर्फ एक गोले की परछाई सदैव गोलाकार बनती है, चाहे रोशनी किसी भी तरफ से आए और पर्दा किसी भी कोण पर छुका हो।*

पृथ्वी एक गोले के रूप में, जो अपनी धुरी पर घूमता है

अब हम एक और सहजबोध-विपरीत विचार की ओर बढ़ते हैं – कि पृथ्वी जो इतनी स्थिर है (भूकम्प के समय की बात छोड़ दें), वह वास्तव में स्थिर नहीं है। यहाँ भी, एक बार फिर हमारी इन्द्रियाँ हमें दगा दे देती हैं, जैसा चपटी धरती के सन्दर्भ में हुआ था जबकि वास्तव में वह गोलाकार है। और अब कहा जा रहा है कि वह स्थिर नहीं है बल्कि घूर्णन कर रही है (सूर्य के आसपास परिक्रमा की बात तो बाद में करेंगे)। और सारे आकाशीय पिण्डों की आभासी गति[7] की व्याख्या पृथ्वी के अपनी धुरी पर प्रतिदिन एक घूर्णन तथा सूर्य के आसपास वार्षिक परिक्रमा के आधार पर की जा सकती है। इसमें चन्द्रमा और ग्रहों की अपनी गति और उसकी

[7] आभासी गति से तात्पर्य क्या है? हम ट्रेन में बैठकर महसूस करते हैं कि पेड़ पीछे की ओर जा रहे हैं – यह आभासी गति है क्योंकि वास्तव में चल तो हम रहे हैं।

पृथ्वी के गोलाकार होने के आधुनिक प्रमाण

वैसे तो आजकल हमारे पास उपग्रह से लिए गए चित्र हैं जो हर कोण से और पृथ्वी के अलग-अलग स्थानों के ऊपर से लिए गए हैं। और तो और, चन्द्रमा से ली गई तस्वीरें भी हैं। चूँकि गोला ही एकमात्र आकार है जो किसी भी कोण से देखे जाने पर एक तश्तरी जैसा ही दिखेगा, इसलिए पृथ्वी को अब एक गोला माना जा सकता है – हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं!

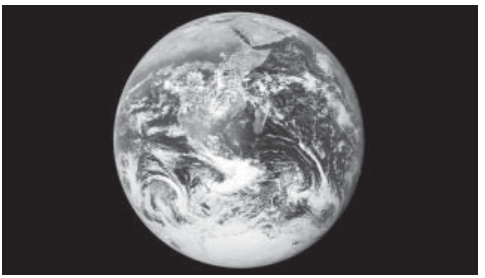

चित्र-4: *यह तस्वीर अपोलो-17 द्वारा 1972 में ली गई थी – इसे 'ब्लू मार्बल' नाम दिया गया है।*
(चित्र इंटरनेट से साभार)

लेकिन करीब डेढ़ सौ साल पहले इंग्लैंड में एक नदी (या उसकी नहर) के तकरीबन 10 कि.मी. लम्बे सीधे टुकड़े का उपयोग करके पृथ्वी की वक्रता नापने का प्रयास किया गया था। प्रयोग कुछ इस तरह किया गया था – एक सीधी रेखा में तीन खम्भे बराबर-बराबर दूरी पर रखे गए थे। तीनों खम्भों की पानी के ऊपर ऊँचाई बराबर थी। यह काफी शान्त नदी थी, इसलिए लहरें वगैरह मापन में बाधा नहीं बन रही थीं। लेकिन जब दूर से देखा जाता तो बीच वाला खम्भा बाजू वाले खम्भों से थोड़ा ऊँचा दिखता था। या यदि खम्भों को एक तरफ से देखा जाता तो सबसे नज़दीक वाला बाकी दोनों से ऊँचा दिखता था। इस प्रयोग को कई अलग-अलग तरह से दोहराया गया और वायुमण्डलीय अपवर्तनांक के हिसाब से संशोधन भी किए गए थे।

कलाओं को शामिल करना होगा। इस अवधारणा को पूरी तरह समझने के लिए हमें कई-कई वर्षों तक अवलोकन करने होंगे। लेकिन यहाँ हम 'औकेम का उस्तरा' निकाल लेते हैं और कहते हैं कि हालाँकि हम एक मॉडल बना सकते हैं जिसमें सचमुच वह दिखता है जो सूर्य, चन्द्रमा, तारों और ग्रहों के दैनिक उदय और अस्त के साथ वास्तव में हो रहा है (हाँ, कई सालों में थोड़ी-बहुत कमी बेशी इन पिण्डों की अपनी गति के कारण हो सकती है)। लेकिन एक कहीं अधिक सरल विचार यह होगा कि-

क) पृथ्वी के दैनिक घूर्णन का उपयोग दैनिक परिवर्तनों की व्याख्या के लिए किया जाए, और

ख) सूर्य के आसपास पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की गति के आधार पर साल

औकेम का उस्तरा

इसे सरल शब्दों में किफायत का सिद्धान्त कहते हैं। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में औकेम के एक दार्शनिक विलियम ने कहा था - pluralitas non est ponenda sine necessitate – जिसका सरल शब्दों में अर्थ है कि ज़रूरत से ज़्यादा मान्यताओं का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए।

व्यावहारिक रूप से विज्ञान में इसका उपयोग प्रतिस्पर्धी व्याख्याओं के बीच फैसला करने के लिए किया जाता है। माना जाता है कि जिस व्याख्या में न्यूनतम अपुष्ट मान्यताएँ हों, उसके सही होने की सम्भावना ज़्यादा है। स्पष्ट है कि 'किफायत का सिद्धान्त' विभिन्न व्याख्याओं के बीच सही-गलत का फैसला नहीं करता बल्कि सिर्फ यह बताता है कि किस व्याख्या को बेहतर माना जाए, और किसे अपनाने से सही रास्ता पकड़ने की सम्भावना ज़्यादा है।

वर्तमान सन्दर्भ में हमारे सामने तारों-ग्रहों की आभासी गति की दो व्याख्याएँ थीं – एक जिसमें पृथ्वी को केन्द्र में स्थिर रखकर बाकी सारे ग्रहों और तारों को उसके इर्द-गिर्द घुमाने की ज़रूरत होती थी। इसमें मानना होता था कि सारे ग्रह और तारे किसी प्रकार से इस तरह गति करते हैं कि वे एक-सी रफ्तार से और एक-सी दिशा में चलते दिखते हैं। दूसरी व्याख्या यह प्रस्तुत हुई थी कि सारे तारे वगैरह तो स्थिर हैं और पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है और पृथ्वी की इस गति के कारण सब चलते हुए दिखते हैं। यह बात ज़्यादा सरल है क्योंकि इसमें एकमात्र मान्यता यह है कि पृथ्वी एकरूप गति से घूमती है जबकि पहली वाली व्याख्या के लिए आपको हरेक आकाशीय पिण्ड के बारे में मानना होगा कि येन-केन-प्रकारेण वे एक ही दिशा में, एक ही चाल से घूम रहे हैं।

किफायत के सिद्धान्त या औकेम के उस्तरे को लागू करें तो दूसरी व्याख्या ज़्यादा मान्य है।

भर में (सालों में) होने वाले परिवर्तनों को समझा जाए।[8]

इस पहली किश्त में हम सिर्फ पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन की बात करेंगे।

गतिविधि 3: तो हम शुरू करते हैं पृथ्वी के मॉडल से (ग्लोब का इस्तेमाल करना सबसे बढ़िया होगा लेकिन एक गेंद से भी काम चल जाएगा; यदि ग्लोब का उपयोग कर रहे हैं, तो बेहतर होगा कि उसे उसके स्टैंड पर से निकाल लिया जाए और उसके अक्ष के झुकाव की जटिलता को कुछ समय के लिए भुला दिया जाए) और यह कहते हैं कि इसके घूर्णन की वजह से ही

[8] *दरअसल, सूर्य-केन्द्रित मॉडल की ज़रूरत तारों की पृष्ठभूमि में अन्य ग्रहों की स्थिति में महीनों से लेकर सालों तक की अवधि में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या के लिए पड़ती है, लेकिन उन सब पेचीदगियों को अन्तिम लेख के लिए रखा गया है।*

पृथ्वी के गोलाकार होने का प्रमाण - एक अन्य प्रयोग

यह साबित करने के लिए एक और प्रयोग किया गया।

वॉलेस ने यह प्रयोग बेडफोर्ड कैनाल में किया था - यह इंग्लैंड में एक लम्बी नहर है और यहाँ हवा के झोंके वगैरह से पानी में लहरें नहीं उठती हैं। वॉलेस ने किया यह था कि नहर की एक तरफ बने एक पुल (ओल्ड बेडफोर्ड ब्रिज) पर एक काली पट्टी चिपका दी। इससे करीब 9 किलोमीटर दूर एक और पुल था। वहाँ से उन्होंने इस पट्टी का अवलोकन एक दूरबीन की मदद से किया। दोनों पुलों के बीच एक खम्भा लगाया गया था जिस पर दो तश्तरियाँ मढ़ी थीं। दूरबीन, ऊपर वाली तश्तरी और ओल्ड बेडफोर्ड पुल पर लगी पट्टी की पानी की सतह से ऊँचाई बराबर थी।

अवलोकन में बीच वाले खम्भे की दोनों तश्तरियाँ काली पट्टी के ऊपर नज़र आईं। इससे साफ हो गया कि पानी की सतह में वक्रता थी।

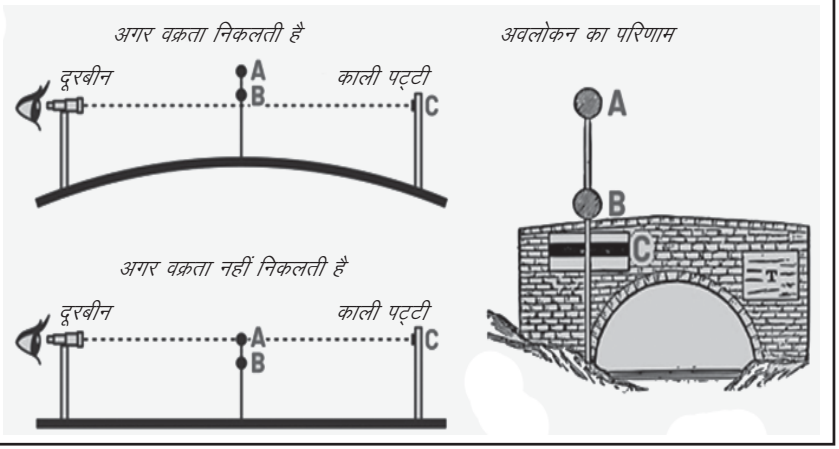

प्रतीत होता है कि सूर्य पूर्व में उदय होता है और पश्चिम में अस्त हो जाता है। कमरे में किसी एक बिन्दु (जैसे किसी पंखे) या किसी व्यक्ति को सूर्य बना दीजिए और सहभागियों से कहिए (बेहतर होगा कि वे चार या पाँच की टोलियों में काम करें) कि वे पृथ्वी को घुमाएँ ताकि सूर्य पूर्व में उदय और पश्चिम में अस्त होता दिखे[9]। यदि भूमध्य रेखा के स्तर से

[9] *अपेक्षाकृत कम उम्र के छात्रों के लिए, बेहतर होगा कि उन्हें भारत पर रखा जाए (यदि ग्लोब है) या गेंद पर एक बिन्दु अंकित कर दिया जाए और पूछा जाए कि इस जगह से 'सूर्य' कब दिखेगा। इसके बाद उनसे 'पृथ्वी' को घुमाने को कहिए ताकि 'सूर्य' उपयुक्त ढंग से उदय व अस्त हो।*

पृथ्वी के घूर्णन की दिशा

आम तौर पर कहा यह जाता है कि सूर्य पूर्व में उदय होता और पश्चिम में अस्त होता दिखता है क्योंकि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। यह पृथ्वी के घूर्णन को बताने का एक तरीका है। लेकिन यह याद रखना ज़रूरी है कि हम जिन दिशाओं को सर्वत्र लागू मानते हैं, वे दरअसल सिर्फ पृथ्वी पर लागू होती हैं। ऐतिहासिक रूप से, दिशाओं को सर्वप्रथम पहचाना और नाम इसी आधार पर दिया गया था कि सूर्य किस दिशा में उगता है (पूर्व) और किस दिशा में अस्त होता है (पश्चिम) और आगे चलकर एक ऐसे तारे की खोज हुई जो रात में अपनी स्थिति नहीं बदलता और इसने हमें उत्तर दिशा दी जब सूर्य नज़र न आ रहा हो।

लेकिन घूर्णन की गति के लिए क्लॉकवाइस या एंटी-क्लॉकवाइस विवरण किसी भी घूर्णन के लिए लागू किया जा सकता है। याद सिर्फ इतना रखना होगा कि आपको बताना पड़ेगा कि अवलोकन किस बिन्दु से किया जा रहा है। पहले-पहल यह थोड़ा भ्रामक लग सकता है लेकिन किसी ऐसी घड़ी की कल्पना कीजिए जिसकी क्रियाविधि पारदर्शी हो और हम उसके काँटों को उल्टी तरफ से भी देख सकें - तब वही गति एंटी-क्लॉकवाइस हो जाएगी।

अत: यहाँ और आगे के सभी लेखों में ध्यान रखें कि पृथ्वी की घूर्णन की गति अन्तरिक्ष से उत्तरी ध्रुव की दिशा से देखने पर एंटी-क्लॉकवाइस होगी। यदि हम दक्षिणी ध्रुव की दिशा से देखेंगे तो पृथ्वी क्लॉकवाइस घूमती दिखेगी।

देखा जाए, तो पृथ्वी को बाएँ से दाएँ अथवा दाएँ से बाएँ घुमाया जा सकता है (यदि उत्तरी ध्रुव से देखेंगे तो यही गति एंटी-क्लॉकवाइस और क्लॉकवाइस हो जाएगी; इस बात को पचाना थोड़ा मुश्किल है लेकिन इसी गति को दक्षिणी ध्रुव की ओर से देखने पर यह क्लॉकवाइस और एंटीक्लॉकवाइस कहलाएगी; इसीलिए यह बताना ज़रूरी है कि आपका दृष्टिकोण क्या है)। सहभागियों से पृथ्वी के घूर्णन की सही दिशा पता करने को कहिए।

एक दिन से दूसरे दिन सूर्योदय और सूर्यास्त के समय बहुत ज़्यादा नहीं बदलते, इसलिए दो सूर्योदयों के बीच की अवधि को 24 घण्टे माना जा सकता है। दिन की अवधियों में होने वाली इन्तहाई विविधता को अनदेखा कर दें, तो कह सकते हैं कि पूर्व में प्रकट होने से लेकर पश्चिम में अस्त होने के बीच की अवधि 12 घण्टे है। तो सूर्य मध्यान्ह के समय ऐन सिर के ऊपर सूर्योदय के लगभग 6 घण्टे बाद होगा।[10] इससे हमें क्या पता चलता है कि पृथ्वी कितनी तेज़ घूमती है? वह एक घूर्णन 24 घण्टे में पूरा करती है। एक पूरा गोला 360 अंश का होता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि पृथ्वी प्रति घण्टे 15 अंश घूम जाती है। इस जानकारी का

उपयोग हम रात में विभिन्न नक्षत्रों (तारामण्डलों) को देखकर यह पता करने के लिए कर सकते हैं कि क्या वे भी एक घण्टे में इतना ही घूमते हैं। कोण को एकदम सही-सही नापना ज़रूरी नहीं है; मोटे-मोटे अन्दाज़ से काम चल जाएगा। चूँकि एक दिन की अवधि में सारे आकाशीय पिण्ड लगभग इसी एक गति से चलते नज़र आते हैं (चन्द्रमा के मामले में यह थोड़ी अलग होती है, लेकिन उसकी बात बाद में करेंगे), ओकैम का उस्तरा प्रकट हो जाता है और कहता है कि यह मान लेना अपेक्षाकृत आसान है कि पृथ्वी एकरूप घूर्णन करती है और बाकी सारे आकाशीय पिण्ड स्थिर हैं, बजाय यह सोचने के कि सारे पिण्ड पृथ्वी के आसपास एक-समान गति से चक्कर लगाते हैं।

लिहाज़ा, सूर्य व अन्य तारों (जो लगभग सिर पर हैं; यदि आप बहुत अधिक उत्तर या दक्षिण के तारामण्डलों को चुनेंगे, तो भ्रमित हो जाएँगे) की गति की व्याख्या एक गोलाकार पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूर्णन के आधार पर की जा सकती है। जैसा कि पहले ज़िक्र किया गया था, चन्द्रमा की गति को इतनी आसानी-से नहीं समझा जा सकता और उसकी कलाएँ अतिरिक्त जटिलता पैदा करती हैं। इनकी चर्चा हम अगले लेख में करेंगे।

[10] एक बार फिर, पूरी चर्चा आगे की जाएगी। जब हम पृथ्वी की धुरी के झुके होने का साल भर में दिन की लम्बाई पर असर की बात करेंगे, हम यह भी चर्चा करेंगे कि आकाश में सूर्य की स्थिति दिन भर में और पूरे साल बदलती रहती है। अर्थात् सूर्य हमेशा (और शायद कभी भी) मध्यान्ह के समय ठीक सिर पर नहीं होता (और यह सम्भव है कि स्थानीय मध्यान्ह और घड़ी के अनुसार मध्यान्ह अलग-अलग हों), लेकिन अभी हम यह मानकर चल रहे हैं।

उमा सुधीर: *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

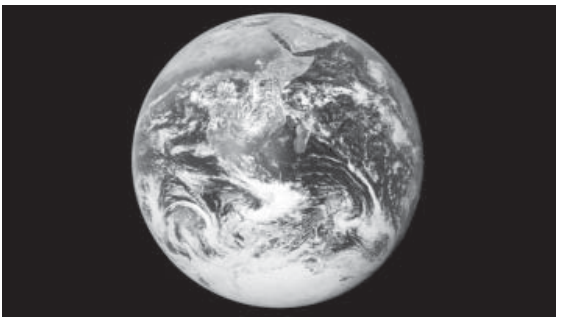

शिक्षक प्रशिक्षण

कालू राम शर्मा

मास्साब ने सोच रखा था कि घर से दूर, आवासीय प्रशिक्षण में हरगिज़ नहीं जाना है। प्रशिक्षण को टालने का कोई-न-कोई उचित कारण खोजना होगा। मास्साब की नज़र में एक ही सम्भव कारण दिख रहा था और वह था, मेडिकल अवकाश। एक-दो दिन का होता तो चलता, मगर यह तो पूरे तीन हफ्तों का मामला था। इतना ही नहीं, लगातार तीन साल तक प्रशिक्षण लेना होगा। आदेश की अवहेलना भी तो नहीं की जा सकती, आखिर शिक्षा विभाग का सील-सिक्के वाला आदेश जो मिला है। इसका मतलब कि गर्मी की छुट्टियाँ तो गईं पानी में!

मास्साब साहस नहीं कर पा रहे थे कि वे जब बीमार हैं ही नहीं तो फिर मेडिकल प्रमाण-पत्र कैसे लगाएँ। उन्होंने काफी सोचा मगर उनके ज़हन में मेडिकल अवकाश के अलावा अन्य कोई विचार आ ही नहीं रहा था। सबसे बड़ी समस्या जो उन्हें दिख रही थी, कि आखिर तीन सप्ताह तक भरी गर्मी बर्दाश्त कैसे करेंगे, खाना कहाँ मिलेगा और रहेंगे कहाँ। एक और बात उन्हें प्रशिक्षण में जाने से रोकने की भरपूर कोशिश कर रही थी – आखिर इन प्रशिक्षणों से कौन-सा स्कूल की पढ़ाई में बदलाव आ जाएगा! शिक्षकीय कार्यकाल के दौरान उनके ज़हन के

एक कोने में यह बात भी घर कर चुकी थी कि इन प्रशिक्षणों में उन्हें बिना वजह प्रशिक्षकों की जली-कटी बातें और निर्देश सुनने पड़ते हैं।

आखिरकार मास्साब को प्रशिक्षण में जाना ही पड़ा। वे कोई बहाना नहीं बना सके। प्रशिक्षण में गए तो वहाँ का नज़ारा कुछ और ही था। रात को वे छात्रावास पहुँच गए जहाँ उनके रहने की व्यवस्था की गई थी। छात्रावास में रात गुज़ारकर, मास्साब सुबह प्रशिक्षण-स्थल पर पहुँच गए। प्रशिक्षण सुबह साढ़े सात बजे शुरू होने वाला था, यह खबर उन्हें रात को ही मिल गई थी। उन्होंने सोचा कि साढ़े सात बजे का समय तो कागज़ पर लिखने के लिए होगा, हो सकता है कि उस समय तक प्रशिक्षण हॉल में प्रशिक्षण देने वाले भी न पहुँचें। यह सोच उनके दिमाग में पिछले अनुभवों के आधार पर ही उभर रही थी।

व्यवस्था पर ज़ोर

सुबह तकरीबन साढ़े सात बजे प्रशिक्षण हॉल में स्रोत दल के सदस्य पहुँच चुके थे। शिक्षक प्रवेश करते जा रहे थे। वैसे, चूँकि पहला ही दिन था, इस वजह से देर ज़रूर हुई थी। जो शिक्षक प्रशिक्षण में पहुँच चुके थे, उन्हें एहसास हुआ कि वक्त का खासा खयाल रखा जा रहा है।

"पहली बार देखने में व्यवस्था ठीक लग रही है प्रशिक्षण की।" मास्साब अपने साथी शिक्षक के कन्धे पर हाथ रखते हुए बोले।

प्रशिक्षण का आयोजन सरकारी स्कूल में किया गया था। स्रोत दल और शिक्षकों की ठहरने की व्यवस्था छात्रावासों में ही की गई थी।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण के अन्तर्गत आयोजित प्रशिक्षणों में व्यवस्थागत मसलों को उतना ही

महत्व दिया जाता जितना कि शैक्षिक पहलुओं को। अगर शिक्षकों और स्रोत दल के सदस्यों के ठहरने की व्यवस्था अनुकूल नहीं है तो इसका काफी असर प्रशिक्षण कार्यक्रम पर ज़रूर पड़ता है। इसलिए प्रशिक्षण के व्यवस्थागत मसलों को जितना बेहतर बनाया जा सके, ऐसी कोशिश हमेशा की जाती।

कक्षाओं के बाहर बरामदे में पीने के पानी के मटके रखे हुए थे। प्रशिक्षण प्रारम्भ हो चुका था। "ये क्या!" मास्साब समेत किसी भी शिक्षक ने यह नहीं सोचा था कि पहले ही दिन कक्षा में शिक्षण उसी प्रकार से प्रारम्भ हो जाएगा जैसा कि स्कूली कक्षाओं में उन्हें बच्चों को पढ़ाना होता है। पंजीयन के दौरान ही उन्हें *बाल वैज्ञानिक* कार्यपुस्तक और एक रजिस्टर वितरित कर दिया गया था। मास्साब ने अपने साथी शिक्षक से कहा, "प्रशिक्षण एक जलसे जैसा लग रहा है।"

वास्तव में, प्रशिक्षण को लेकर स्रोत दल ने काफी दिन पहले तैयारी प्रारम्भ कर दी थी। प्रशिक्षण का आयोजन एक शासकीय शैक्षिक संस्थान में ही किया गया था, परन्तु वहाँ बुनियादी सुविधाएँ मुहैया करवाने की कोशिश की गई थी। प्रशिक्षण स्थल पर सफाई का खासा ध्यान रखा गया था, कमरे-बरामदे साफ लग रहे थे, कमरों में बैठने के लिए ज़मीन पर ही साफ-सुथरी जाजम बिछा दी गई थी। कक्षाओं के बाहर प्रशिक्षण का टाइम-टेबल चिपका दिया था।

प्रशिक्षण का माहौल

प्रशिक्षण प्रारम्भ हुए लगभग एक सप्ताह बीत चुका है। शिक्षकों को कुछ-कुछ बातें गहरे-से समझ में आने लगीं। कुछ मामले शिक्षकों को सुकून देते हैं। मसलन, इस प्रशिक्षण में स्रोत सदस्य उनकी बात को कक्षा में ध्यान से सुनते, उनके सवालों की उपेक्षा नहीं की जाती, अगर किसी सवाल का जवाब नहीं दिया जा सकता तो साफ तौर पर कह दिया जाता कि "इस सवाल का जवाब नहीं आता, जब जवाब मिलेगा तो चर्चा करेंगे।" उनकी बातों को तोड़ा-मरोड़ा नहीं जाता। प्रशिक्षण में भाषण नहीं दिए जा रहे हैं, बल्कि शिक्षकों को स्वयं ही प्रयोग करने के अवसर दिए जा रहे हैं। शिक्षकों को कक्षाओं में बाल वैज्ञानिक के अध्यायों को कैसे पढ़ाना है, उस विधि से गुज़रने के अनुभव दिए जा रहे हैं। वास्तव में, इस प्रक्रिया के दौरान शिक्षक विषयवस्तु और विधि की मिलीजुली रणनीति को आत्मसात कर पा रहे हैं। हालाँकि, अभी भी कुछ शिक्षकों को खीज छूटती है कि उन्हें सीधे-सीधे जानकारियाँ नहीं दी जा रही हैं और न ही प्रयोगों के नतीजे बताए जा रहे हैं। उन्हें अवधारणाओं की परिभाषाएँ आदि भी नहीं बताई जा रही हैं।

दरअसल, यही खास बात थी इस प्रशिक्षण की जहाँ शिक्षक को चिन्तनशील बनाने की पुरज़ोर कोशिश थी, जहाँ स्रोत दल एक खास तैयारी के साथ आते, और शिक्षकों को सोचने और करने को प्रेरित करते। अब तक की जो आदत पड़ चुकी थी कि हमें सब कुछ पका-पकाया परोस दिया जाए, इस मानसिकता को चकनाचूर करने की भरपूर कोशिश होशंगाबाद विज्ञान ने की थी।

प्रशिक्षण के दौरान एक ऐसा माहौल बनाने की कोशिश की जाती, जैसा कि शिक्षकों को स्कूल में पहुँचकर पढ़ाते समय मिलता है। इसमें शामिल है बैठक व्यवस्था, टोलियों का निर्माण, प्रयोग खुद करके देखना, विषय वस्तु की समझ, अवलोकनों के बाद सामूहिक चर्चा के ज़रिए निष्कर्ष निकालना आदि। अक्सर ऐसा होता है कि हर सवाल के एक ही जवाब की परम्परा होती है। तो यह बात शिक्षकों के दिमाग से निकालना अत्यन्त ज़रूरी है कि यह सही नहीं है। दरअसल, ऐसा कह देने भर से समझ में नहीं आता कि किसी सवाल के वाकई में एक से ज़्यादा जवाब हो सकते हैं, उसे यथार्थ में समझने के अवसर प्रशिक्षण में मिलते हैं।

मगर ऐसा क्यों?

विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की पहली शर्त यह थी कि शिक्षक को सबसे पहले कक्षावार प्रशिक्षण प्राप्त करना ज़रूरी था। प्रदेश में कार्यक्रम के विस्तार के दौरान सबसे पहले शिक्षकों को तैयार किया गया। जिस वर्ष कार्यक्रम का विस्तार किया गया, उसके पूर्व ही शिक्षकों का प्रशिक्षण प्रारम्भ कर दिया गया था। चूँकि होशंगाबाद विज्ञान छठी, सातवीं और आठवीं कक्षाओं से सम्बन्धित था, इसलिए प्रत्येक वर्ष शिक्षकों को गर्मी की छुट्टियों में तीन सप्ताह का कक्षावार प्रशिक्षण प्राप्त करना ज़रूरी था।

उल्लेखनीय है कि प्रदेश में जो शिक्षक परम्परागत विज्ञान विषय का शिक्षण करते हैं, उनमें से अधिकांश विज्ञान विषय के नहीं थे। उन्होंने विज्ञान को स्कूल स्तर पर ही पढ़ा होता है। बावजूद इसके, उन्हें कक्षाओं में विज्ञान का शिक्षण करना होता है। वैसे मास्साब स्वयं भी विज्ञान विषय हाई स्कूल तक ही पढ़े हुए थे। इसलिए विज्ञान शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए विज्ञान का प्रशिक्षण इसके अनुरूप बनाने की जद्दोजहद की जा रही थी।

यह अनुशंसा कोठारी आयोग ने की थी कि शिक्षकों को उस प्रक्रिया से गुज़ारना होगा जिसकी अपेक्षा उनसे कक्षाओं में की जा रही है। इस लिहाज़ से कोठारी आयोग की इस सिफारिश पर असल काम होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत

किया गया। इस दौरान, शिक्षकों को उन अध्यायों का प्रशिक्षण उसी प्रकार से दिया जाता, जैसा कि उनको कक्षाओं में बच्चों को पढ़ाना है। यानी उस प्रक्रिया से गुज़रना जिससे उन्हें बच्चों को गुज़ारना होता है।

वास्तव में, प्रशिक्षण का मकसद यह था कि शिक्षक अपनी विज्ञान विषय की कक्षाओं में बच्चों को इस प्रकार से तैयार कर सकें कि वे स्वयं अपने हाथों से प्रयोग करें, प्रयोगों के अवलोकन करें और लिखें। फिर उन अवलोकनों के आधार पर अपने साथियों और शिक्षकों से चर्चा करके खुद ही स्वतन्त्र निष्कर्ष निकालें। बच्चों को कक्षा में सवाल पूछने के लिए प्रेरित किया जाए और उन सवालों के जवाब ढूँढ़ने की खातिर उचित प्रयोगों की रचना करने के लिए सक्षम बनाया जाए।

कौन है सर्वज्ञाता?

प्रशिक्षण में इस बात का भी खयाल रखा जाता कि शिक्षक की भूमिका अपनी कक्षा में सर्वज्ञाता की होने की बजाय प्रेरणा स्रोत, मार्गदर्शक व सहयोगी जैसी हो। कई बार शिक्षकों को प्रशिक्षण में यह बात खटकती कि स्रोत दल के सदस्य कह देते कि उन्हें इस सवाल का जवाब नहीं आता। दरअसल, विज्ञान शिक्षण की बुनियाद में शिक्षा के कई सारे अहम मसले शामिल थे जिनमें से यह भी एक है। शिक्षक को इस बात का एहसास प्रशिक्षण में कराया जाता कि जो स्रोत दल के सदस्य हैं, वे भी वाकई में ज्ञान के सर्वज्ञाता नहीं हैं। वे 'सम्पूर्ण' नहीं हैं। होशंगाबाद विज्ञान के शिक्षक प्रशिक्षणों में कई बार ऐसे अवसर आए जहाँ शिक्षकों को स्रोत दल के सदस्यों से जवाब पाने के मामले में निराशा हाथ लगी। मगर यहीं से एक नए विचार का जन्म भी हुआ।

प्रशिक्षण के एक सत्र में एक प्रयोग किया गया। एक पौधे की टहनी काटकर लाल स्याही के घोल में रख दी गई। करीब आधे घण्टे के बाद पत्तियों की शिराएँ लाल हो गईं। इस पर एक शिक्षक ने पीएच.डी. धारी प्रशिक्षक से पूछा कि "यदि नीली स्याही के घोल में टहनी को रखें तो क्या होगा?" "मुझे नहीं पता। इसके लिए तो प्रयोग करना होगा।" स्रोत दल के सदस्य ने बेझिझक जवाब दिया। उन शिक्षक ने एकदम टोका, "तो फिर आपको पीएच.डी. कैसे मिल गई?" इस पर उस स्रोत सदस्य ने कहा, "डॉक्टर की उपाधि प्राप्त व्यक्ति भी सर्वज्ञाता नहीं होता।" इस घटना से शिक्षकों को भी समझ में आया कि उन्हें भी कक्षा में ऐसी स्थिति में बच्चों के सामने यह मानना पड़ेगा कि "मैं नहीं जानता, पर आओ, मिलकर इसका जवाब खोजें।"

प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक

होशंगाबाद विज्ञान का प्रशिक्षण

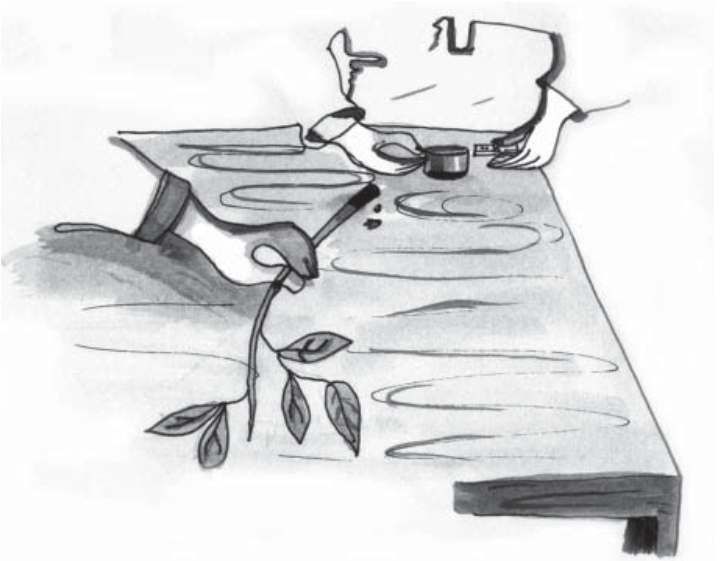

एक समूचे पैकेज का अहम हिस्सा था। स्कूल में होशंगाबाद विज्ञान का शिक्षण शिक्षक तब ही कर सकता है जब उसने प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। इसका रिकॉर्ड संगम केन्द्र पर रखा जाता था कि किस शिक्षक ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है। संगम केन्द्र की ओर से स्पष्ट निर्देश माध्यमिक स्कूलों को जाते कि विज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक ही *बाल वैज्ञानिक* विषय की कक्षाएँ पढ़ाएँगे।

विज्ञान शिक्षण की विधि में शामिल है प्रयोग डिज़ाइन करना, अवलोकन करना, आँकड़े एकत्रित करना, आँकड़ों को व्यवस्थित करना, सर्वेक्षण करना, परिभ्रमण करना, वैकल्पिक प्रयोग-सामग्री खोजना, सामूहिक चर्चा करना आदि। दिलचस्प बात यह होती कि शिक्षकों को प्रश्नों का जवाब खोजने के लिए खूब प्रेरित किया जाता।

प्रशिक्षण स्थल पर एक पुस्तकालय की स्थापना भी की जाती जहाँ शिक्षक और स्रोत दल के सदस्य खाली वक्त में किताबें, पत्रिकाएँ आदि पढ़ सकें। साथ ही, संध्याकालीन वक्त में व्याख्यानों का आयोजन किया जाता, जिसमें स्कूली शिक्षा के व्यापक विषय शामिल होते। इन सभी आयोजनों के केन्द्र में शिक्षक ही रहते। शिक्षकों को हर मंच पर अपने विचारों को व्यक्त करने के अवसर दिए जाते।

फॉलोअप और सतत प्रशिक्षण

प्रशिक्षण में उच्चतर माध्यमिक

विद्यालयों के विज्ञान के व्याख्याता और उच्च श्रेणी शिक्षक भी शामिल होते थे। दरअसल, विज्ञान विषय के व्याख्याता और उच्च श्रेणी शिक्षक, सब अपने संगम केन्द्र के माध्यमिक स्कूलों में फॉलोअप (अनुवर्तन) करते थे। अनुवर्तनकर्ताओं को भी विज्ञान विषय की विषयवस्तु और विधि का प्रशिक्षण दिया जाता था। साथ ही, उन्हें फॉलोअप कार्य करने और इसकी रिपोर्ट बनाने का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। अनुवर्तनकर्ताओं की टीम संगम केन्द्र के स्कूलों में जाती और वहाँ कक्षाओं का अवलोकन करती। ये अनुवर्तनकर्ता मासिक बैठकों में भी भाग लेते। अनुवर्तनकर्ताओं का यह समूह होशंगाबाद विज्ञान के समर्थन समूह के रूप में कार्य करता था। स्कूलों में जब शिक्षक *बाल वैज्ञानिक* का अध्यापन करवाते तो ये अनुवर्तनकर्ता उन्हें शैक्षिक रूप से सहायता करते। ज़ाहिर है कि हाई स्कूल के एक व्याख्याता के पास विज्ञान विषय की समझ अपेक्षाकृत गहरी होती है।

शिक्षकों ने क्या सीखा, इसके लिए प्रशिक्षण के सप्ताहान्त में एक लघु प्रश्न हल करने को दिया जाता। लघु प्रश्न किसी अध्याय पर केन्द्रित होता जो शिक्षकों का मूल्यांकन करने की बजाय यह समझने में मददगार रहता कि शिक्षकों ने अमूर्त अवधारणाओं को किस हद तक आत्मसात किया है। शिक्षकों द्वारा हल किए गए लघु प्रश्नों का विश्लेषण करके अगले दिनों में उन पर चर्चा की जाती।

ऐसा नहीं है कि एक बार तीन सप्ताह का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया और फिर उसके बाद स्कूलों में सब कुछ ठीक ही होता रहेगा, नहीं। जब

हम कहते हैं कि सतत प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए तो इसका खयाल होशंगाबाद विज्ञान में रखा गया था। शिक्षा सत्र में प्रत्येक संगम केन्द्र में मासिक बैठकों का आयोजन किया जाता। वहाँ शिक्षक अपने अनुभवों को साझा करते और अगले माह पढ़ाए जाने वाले अध्यायों को लेकर तैयारी करते।

स्रोत दल

स्रोत दल की चर्चा किए बिना शिक्षक प्रशिक्षण की बात अधूरी ही रह जाएगी। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत (1972) से ही अखिल भारतीय विज्ञान शिक्षक संघ (भौतिकी अध्ययन ग्रुप), टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च व भारत सरकार के वैज्ञानिकों ने इसमें अहम भूमिका निभाई। एक साल के बाद इस दल में दिल्ली विश्वविद्यालय और आई.आई.टी. कानपुर व मुम्बई के वैज्ञानिक व शोध छात्र भी जुड़ गए। दिल्ली विश्वविद्यालय की टीम को इस कार्यक्रम में जुड़ने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने औपचारिक समर्थन व सहायता दी। देश की शिक्षा के इतिहास में शायद यह पहला मौका था जब यह बात व्यावहारिक रूप से स्वीकार की गई कि स्कूली स्तर पर और गाँव के स्कूलों में, शिक्षा में परिवर्तन और सुधार के लिए विश्वविद्यालयों के लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की इस पहल से प्रेरित होकर 1975 में मध्य प्रदेश शिक्षा विभाग ने भी अपने महाविद्यालयों के प्राध्यापकों को इस कार्यक्रम से जुड़ने की अनुमति दी। इस तरह मध्य प्रदेश के महाविद्यालयों के प्राध्यापक भी इस कार्यक्रम में जुड़े और शिक्षक प्रशिक्षण से लेकर *बाल वैज्ञानिक* कार्यपुस्तक लेखन व मासिक बैठकों में गहरा शैक्षिक योगदान दिया।

शिक्षक प्रशिक्षण सम्पन्न हो चुका था। शिक्षक विज्ञान शिक्षण की प्रक्रिया, विधि और विषयवस्तु में एक स्तर पर तैयारी के साथ लौट रहे थे। उन्हें अपने स्कूल में बच्चों के लिए उसी ढंग से विज्ञान का शिक्षण करना होगा जो उन्होंने प्रशिक्षण के दौरान अर्जित किया है।

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

सभी चित्र: योगेश्वरी: स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। साथ ही, म्यूरल और पोर्ट्रेट भी बनाती हैं। शारदा उकील स्कूल ऑफ आर्ट से कला में डिप्लोमा। वर्तमान में, अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर कर रही हैं।

वह अब भी घुमतो है!

हरिशंकर परसाई

चर्च के भीतर बहुत-से लोग सर झुकाए खड़े हैं। फिर वे घुटनों के बल बैठ जाते हैं। सभी ध्यानमग्न हैं और भीतर का वातावरण गम्भीर और सात्विक है। ऐसे में मन और मस्तिष्क में कोई और विचार आ ही नहीं सकते - धार्मिक विचार ही प्रधानतः सभी का पथ-निर्देशन करते हैं। इस झुण्ड में एक नवयुवक मेडिसिन की पढ़ाई करने वाला भी है। वह भी पीसा के उस चर्च में घुटनों पर झुका हुआ है।

उसी समय चर्च का एक कर्मचारी भीतर आकर लम्बी चेन से टँगे तेल के लैम्प को नीचे उतारता है, लैम्प में तेल भरता है, लैम्प ऊपर चढ़ाता है और आगे बढ़ जाता है। लेकिन चेन हिलती रहती है और उसके साथ ही लैम्प भी हिलता-रहता है। थोड़ी-सी आवाज़ भी होती है... टिक... टैक... टिक... टैक... टिक... टैक...।

नवयुवक की प्रार्थना में व्यवधान उत्पन्न होता है। वह मुड़कर अपनी दृष्टि हिलते लैम्प पर जमा देता है और फिर विचारों का एक प्रबल प्रवाह उसके दिमाग में बहने लगता है।

वह अचानक चौंक पड़ता है। उसकी आँखों में चमक कौंधने लगती है और वह प्रसन्नता से भर जाता है। जब उसने हिसाब लगाया तो पाया कि लैम्प के इधर-उधर हिलने-डुलने में एक विशेष सम्बन्ध है। हर बार लैम्प के हिलने का समय एक-सा है। यह समय हर बार समान रहता है, जबकि लैम्प के हिलने की दूरी धीरे-धीरे कम होती जाती है।

"क्या यह सच है? या मैं कोई सपना देख रहा हूँ? यदि यह वाकई सच है, तो क्या मैंने किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य का पता लगा लिया है? घर जाकर जाँचना चाहिए।" और वह नवयुवक घर की ओर दौड़ा चला जाता है।

प्रयोग आरम्भ हुआ

घर पहुँचकर उसने एक ही लम्बाई के धागे के समान टुकड़े लिए और इन धागों के छोर पर समान वज़न के शीशे के टुकड़े बाँध दिए। उसने अपने दादा, मजिओ टेडाल्डी को पास बुलाकर समझाया कि एक धागे को हिलाकर तुम उसके चक्करों का समय गिनो और मैं दूसरे धागे को हिलाकर उतने ही चक्करों का समय गिनता हूँ।

गैलीलियो के बूढ़े दादा पहले तो मुस्कुरा दिए, फिर कहना मानकर

उन्होंने वैसा ही किया। किसी बड़े परिणाम की प्रतीक्षा करके गैलीलियो ने दोनों पेण्डुलम हिला दिए। सौ बार यहाँ-वहाँ हिलाने के पश्चात नवयुवक ने जब समय देखा, तो दोनों दशाओं में समय एक-सा निकला।

इस तरह चर्च के लैम्प के हिलने-डुलने से आज संसार के पास प्रकृति का एक महत्वपूर्ण और उपयोगी नियम हाथ लग गया। इसी किस्म के विभिन्न अवलोकन और प्रयोग गैलीलियो अपनी अठहत्तर वर्ष की ज़िन्दगी में हमेशा करता रहा।

बचपन से ही गैलीलियो की आदत थी कि वह दूसरों के सूत्रों, प्रयोगों और विधियों की चिन्ता किए बगैर ही प्रयोग करता रहता और परिणाम निकालता था। संगीतकार का यह बच्चा बचपन से ही सितारों को घूरता रहता था और पिता की दृष्टि में यह उसकी विचित्र आदत में शुमार हो गया था। कक्षा में शिक्षक से व्याकरण या साहित्य पढ़ने की बजाए आकाश के बारे में सोचता, सितारों की दुनिया में खोया रहता और चन्द्रमा को पढ़ने का प्रयास करता।

शिक्षा-संघर्ष

बारह वर्ष की उम्र में गैलीलियो को पढ़ने के लिए स्कूल भेजा गया, पर स्कूल का वातावरण ऐसा था कि कुछ सीखने की जगह वह धार्मिक तथ्यों में रुचि लेने लगा। जब यह बात गैलीलियो के पिता को पता चली तो उस स्कूल से उसे वापस बुला लिया गया।

इस घटना का गैलीलियो पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि उसके दिल-ओ-दिमाग पर विज्ञान का गहरा असर था। गणित में दक्षता प्राप्त करने के

बाद वह विज्ञान के क्षेत्र में नवीन आविष्कार करने में लग जाना चाहता था। गैलीलियो के पिता की इच्छा थी कि उनका बेटा कपड़े का व्यापारी बने और अच्छा खासा द्रव्य एवं धन अर्जित करे। बाद में दोनों में एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार उसे मेडिकल स्कूल में भर्ती किया गया।

मेडिकल स्कूल में भर्ती हो जाने के बाद भी गैलीलियो मेडिसन की पुस्तकों में आर्कमिडीज़ जैसे वैज्ञानिकों की किताब छिपाए रहता और गणित एवं विज्ञान की पढ़ाई के साथ ही वह छोटे-छोटे यंत्र बनाने में व्यस्त रहता। प्रोफेसरों का ज्ञान सीमित था और वे सोचते थे कि अरस्तु ने विज्ञान के क्षेत्र में जितना सम्भव था सब कर दिया है, सबकुछ खोज निकाला है। वे सब बात-बात में अरस्तू की खोजी और कही गई बातों के उदाहरण देते थे। उनका विचार था कि गैलीलियो का दिमाग खराब हो गया है, इसीलिए उसे व्यर्थ की बातों से दूर रखने के लिए उसके पिता को सूचित किया गया। गैलीलियो के पिता ने उसे अध्यापकों की सलाह पर अमल करने को कहा।

पर गैलीलियो ने हार मानने या अपने प्रयोग बन्द करने से इन्कार कर दिया।

नाराज़ होकर अध्यापकों ने गैलीलियो को मेडिकल का डिप्लोमा देने से इन्कार कर दिया। अन्ततः गैलीलियो को मेडिकल की पढ़ाई छोड़नी पड़ी। इस अवधि में गैलीलियो ने इटली के कुछ प्रसिद्ध गणितज्ञों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था और वे उसे 'आधुनिक आर्कमिडीज़' भी कहने लगे थे।

पढ़ाई समाप्त करते ही गैलीलियो को पीसा विश्वविद्यालय में गणित पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया। एक तो वह पद खाली था, दूसरा गैलीलियो पढ़-लिखकर पैसा कमाना चाहता था जिससे जीवन की गाड़ी कुछ आगे बढ़ सके। इस पद पर कार्य करने के बाद भी उसे बहुत कम आमदनी हो पाती थी, जीवन-निर्वाह के लिए भी अपर्याप्त।

गैलीलियो ने इन मुसीबतों से हार नहीं मानी। वह केवल अरस्तू या किसी और वैज्ञानिक के फॉर्मूले या आविष्कार पर आस्था नहीं रखता था। खुद प्रयोगों को करके देखता और तब उन पर विश्वास किया करता। उसकी इस आदत ने बहुत-से शत्रु बना लिए। कक्षा में पढ़ाते तो विद्यार्थी व्यंग्यभरी-हँसी हँसते और साथी प्रोफेसर उनकी बुराई करते न थकते। अरस्तू द्वारा समझाए और लिखे गए सिद्धान्तों को वे सब सही मानते थे और उन सिद्धान्तों पर किसी भी प्रकार की टिप्पणी सहन नहीं कर सकते थे। ये टिप्पणी-मात्र भी अरस्तू की व्याख्याओं का खण्डन मानी जाती थी। साथी प्रोफेसरों ने कई बार गैलीलियो को चेतावनी दी कि वह अरस्तू के सिद्धान्तों का

खण्डन करना बन्द करे और यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो उसे अत्यन्त कड़े विरोध का सामना करना पड़ेगा। पर गैलीलियो तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

गेलीलियो का दावा और लोगों का अविश्वास

वे कहा करते थे कि यदि किसी ऊँचे स्थान से एक-साथ भारी और हलकी वस्तुएँ गिराई जाएँ, तो दोनों असमान भार की वस्तुएँ धरती पर एक-साथ गिरेंगी। इस कथन को साथी प्रोफेसरों द्वारा चुनौती के रूप में स्वीकार किया गया। गैलीलियो से कहा गया कि वे विश्वविद्यालय के शिक्षकों और विद्यार्थियों की उपस्थिति में रोम की जनता के सामने प्रयोग द्वारा अपने कथन की पुष्टि करें। गैलीलियो ने यह चुनौती सहर्ष स्वीकार कर ली। स्थान और समय नियत कर लिए गए। पीसा की मीनार प्रयोग के लिए चुनी गई।

झुकी हुई पीसा की मीनार, रंग-बिरंगे कपड़ों में सजे विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, मखमल के चोगों में गम्भीर मुद्रा लिए प्रोफेसर, शोरगुल करते हुए नागरिक, चारों तरफ आश्चर्यचकित आँखों के अनगिनत जोड़े, उत्सुकतापूर्ण वातावरण। आज तक अरस्तू के कहे गए को पत्थर की लकीर माना गया था। किसी ने उसके सिद्धान्तों को प्रयोग की कसौटी पर जाँचने की बात तक न सोची थी।

"पंख और एक बड़ा ठोस गोला एक-साथ गिरेंगे? अविश्वसनीय, सरासर झूठ! आज गैलीलियो की इज़्ज़त धूल में मिलेगी।" सब लोग इस नतीजे की साँस रोककर प्रतीक्षा कर रहे थे। "आज गैलीलियो का गर्व चूर हो जाएगा, उसका मस्तक शर्म से झुक जाएगा। अपनी गलती और हिमाकत की उसे अच्छी कीमत चुकानी पड़ेगी।"

जय या पराजय?

नियत समय पर चेहरे पर विश्वास और सन्तोष के भाव लिए गैलीलियो पीसा की मीनार के पास आ खड़ा हुआ। सभी की साँस रुक-सी गई। गैलीलियो न तो चिन्तित दिखाई दे रहा था, न ही उसके हाव-भाव से किसी प्रकार का असन्तोष झलकता था। गैलीलियो के एक हाथ में दस पाउण्ड का और दूसरे हाथ में एक पाउण्ड का गोला था - दो ठोस, चमकदार गोले। गोलों को हाथों में लिए वह मीनार पर चढ़ने लगा तो चारों तरफ हल्का-सा शोरगुल फैल गया और कुछ लोग कुटिल-हँसी हँस पड़े। धीरे-धीरे चढ़कर वह ऊपर पहुँचा। ऊपर पहुँचकर एक बार फिर गैलीलियो ने मानो मूकभाव से चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वास के साथ उपस्थित जनसमूह पर एक सरसरी निगाह डाली। पीसा की झुकी हुई मीनार के किनारे दोनों गोले रखकर उसने धीरे-से उन गोलों को धक्का देकर गिरा दिया।

पलक झपकते दोनों गोले एक साथ, एक समय धरती पर खट्ट से गिरे।

लोगों की ज़बान को मानो लकवा मार गया हो। कोई भी आदमी चूँ तक न कर सका। उनकी साँसें जहाँ की तहाँ रुक-सी गईं। आँखें क्षण भर के लिए फटी रह गईं।

गैलीलियो ने महान वैज्ञानिक अरस्तू के कथन को झूठा साबित कर दिया। इतना बड़ा साहस!

विश्वास न करने का मन हो रहा था, लेकिन अविश्वास का स्थान ही नहीं रह गया था।

इतने पर भी शेष प्रोफेसरों के मन में गैलीलियो के प्रति बेहद तीखी घृणा और विरक्ति थी। विश्वविद्यालय के अधिकारी उस दिन की राह देखने लगे जब वे किसी-न-किसी दोषारोपण के आधार पर गैलीलियो जैसे द्रोही और विकृत विचारों वाले प्रोफेसर को पदच्युत कर सकें। और उन्हें इसका मौका भी मिल गया। वहीं के राजकुमार ने एक मशीन तैयार करके गैलीलियो की सम्मति के लिए भेजी।

गैलीलियो ने कहा कि मशीन तो ठीक है, पर उससे काम करना असम्भव है। अब क्या था। उसके इस कथन की वजह से उसे पीसा विश्वविद्यालय से अलग कर दिया गया।

नया वातावरण, नए आविष्कार

गैलीलियो को पीसा से हटने की कोई विशेष कीमत नहीं चुकानी पड़ी क्योंकि शीघ्र ही पैडुआ विश्वविद्यालय में उसे नियुक्त कर लिया गया। वेतन भी पहले से ज़्यादा था और काम करने की आज़ादी भी।

यहाँ आकर उसे चैन मिला और मुक्त वातावरण ने उसे उत्साहित किया। अब एक बार फिर वह अपनी खोजों में व्यस्त हो गया। हर समय वह विद्यार्थियों से घिरा रहता। अपनी पैनी दृष्टि के बल पर गैलीलियो सैनिक-शिक्षा तक देने में सक्षम था। फलस्वरूप, उसके पास बहुत-से लोग शिक्षा लेने आते। कुछ सैनिक, कुछ सेना के उच्च-अधिकारी और कुछ राजनीतिज्ञ बनने आते थे।

अधिकांश गैलीलियो इन्हीं लोगों से घिरा रहता। कभी-कभी वह ऊबता भी और ऐसे समय वह शहर के मनोरंजक कार्यों में, उत्सवों में उत्साहपूर्वक भाग लेता - नृत्य करता, नाटक रचता और खेल-क्रीड़ा में भाग लेता। ये बदलाव उसे मानसिक और शारीरिक शान्ति प्रदान करते थे।

गैलीलियो की सफलताओं की कहानी ने उसकी ख्याति चारों ओर फैला दी थी। उसने खोज में रुचि रखने वाले स्नातकों के लिए एक नई संस्था की स्थापना की जिसमें बहुत-से विद्यार्थी और शिक्षा-शास्त्री सम्मिलित हो गए। इन्हीं के बीच रहते हुए गैलीलियो ने अनेक महत्वपूर्ण यंत्रों का आविष्कार किया। थर्मामीटर, टैलिस्कोप, कम्पास, सब इसी समय की देन है।

टैलिस्कोप बनाने के लिए गैलीलियो ने सदैव एक डर का आभार माना था। उसने लेंसों को इस ढंग से जमाया कि उनकी सहायता से दूर की चीज़ों को पास देखा जा सकता था। गैलीलियो ने कुछ अच्छी गुणवत्ता के लेंसों को इकट्ठा किया और गणित के सूत्रों को लगाकर एक टैलिस्कोप बनाया, जिसे प्रथम वैज्ञानिक टैलिस्कोप कहा जा सकता था। जनता के सामने टैलिस्कोप अर्थात् दूर-दर्शक यंत्र का प्रथम प्रदर्शन भी गैलीलियो द्वारा किया गया था। वेनिस में एक ऊँचे स्थान पर उसने वह टेलिस्कोप लगाया और सभी ने एक-एक कर दूर चरते हुए जानवर, चर्च जाते लोग, दूर के मकान देखे और आश्चर्य से दंग रह गए। रात में लोगों ने तारों और चाँद को देखा। इसके पहले कभी किसी ने सितारों को इतने नज़दीक से नहीं देखा था, इतना ताज्जुब नहीं किया था।

गैलीलियो के बनाए उस प्रथम दूरदर्शक यंत्र को खरीदने के लिए सैकड़ों लोग लालायित थे। सभी अच्छी खासी रकम देने को तैयार थे। पर गैलीलियो इन सबसे तनिक भी प्रभावित नहीं हुआ और वह पहला टैलिस्कोप उसने वेनिस के ड्यूक को

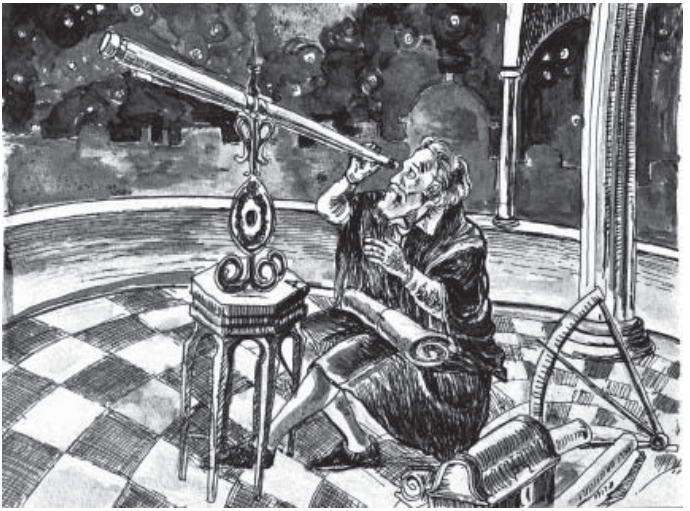

भेंट कर दिया। ड्यूक ने इस पर खुश होकर गैलीलियो को पैडुआ विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफेसर पद पर नियुक्त कर दिया।

गैलीलियो इस पद से सन्तुष्ट नहीं था और वह वापस पीसा जाना चाहता था। पीसा विश्वविद्यालय में तो वह नियुक्त नहीं हुआ, पर फ्लोरेंस के ड्यूक ने उसे अपने दरबारी के रूप में स्वीकार कर लिया। यहीं से उस महान वैज्ञानिक के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी शुरू होती है।

गैलीलियो ने अपने टैलिस्कोप से आकाश की दुनिया का जो वास्तविक अध्ययन किया था, उसी को उसने एक किताब का रूप दे दिया जिसका नाम था *सिडेरस ननसियस* अर्थात् 'तारों का दूत'। इस पुस्तक में कहा गया था कि आकाश में कई ग्रह उपस्थित हैं, असंख्य तारे हैं, आकाश-गंगा है। ग्रहों के तो नाम तक गिनाए गए थे। पृथ्वी के सम्बन्ध में वह एक बिलकुल नई धारणा मानने लगा था। उसका मत था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है और सूर्य स्थिर है। पर वह अपनी पुस्तक में ऐसा नहीं लिख सका। उसने अपने मित्रों से ही यह साझा करके सन्तोष कर लिया।

परन्तु इस घटना की चर्चा सभी ओर होती थी। उसे कॉपरनिकस का अनुयायी माना गया और दण्ड दिया गया। चेतावनी देकर, उससे भविष्य में इस तरह की बात न कहने का आश्वासन ले लिया गया।

धर्म-विरोधी कथनों का दण्ड

वह पुनः वैज्ञानिक खोजों में जुट गया। दिन-रात एक करके कई नई

उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। इन महत्वपूर्ण आविष्कारों में इस परिकल्पना की पुष्टि भी थी कि सूर्य स्थिर है और हमारी पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है।

ऐसा कहना उन दिनों आज जैसा सरल न था। जनता और शासक धर्मान्ध थे। धर्म के विरुद्ध जाने का किसी में साहस न था, फिर चाहे वह महान वैज्ञानिक ही क्यों न हो।

खोज तो सही थी परन्तु इसे प्रकट करना मुश्किल था। गैलीलियो ने एक नई पुस्तक लिखी और उस पुस्तक में सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के चक्कर लगाने के बारे में भी विस्तारपूर्वक लिखा।

यह धार्मिक विश्वास के एकदम विपरीत था। अटूट धार्मिक विश्वास तो यह था कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य घूमता है। गैलीलियो ने चर्च की सत्ता को चुनौती दी थी। वह धर्म-विरुद्ध बात कर रहा था।

बस, फिर क्या था! आग लग गई। विरोध की आवाज़ तेज़ होती गई और इसे राज्य की ओर से एक अक्षम्य अपराध घोषित कर दिया गया।

इस अपराध का दण्ड केवल एक ही हो सकता था, मृत्युदण्ड। उसे रोम आने के लिए कहा गया - समन भेजा गया। गैलीलियो बीमार था और उसकी दशा ऐसी नहीं थी कि वह किसी भी प्रकार से रोम जा सके। शारीरिक और मानसिक स्थितियाँ इस यात्रा के लिए कदापि अनुकूल नहीं थीं, पर इस समन से किसी भी रीति से बचना मुश्किल था।

डॉक्टर ने सर्टीफिकेट दिया, "गैलीलियो शैय्या पर है। रोम जाने का मतलब होगा, उसकी निश्चित मृत्यु।"

इन बातों का, यहाँ तक कि डॉक्टरी मत का भी धर्मान्ध सत्ता पर कोई असर नहीं पड़ा। एक तो कड़ाके की सर्दी, दूसरे रोम जाने का मार्ग अत्यन्त दुखदायी। और सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह तथ्य कि गैलीलियो अत्यन्त वृद्ध। साक्षात् मौत मानो बुला रही थी। इस निमंत्रण को पूरा करने की किसमें हिम्मत, किसमें उत्सुकता हो सकती थी। रोम जाने के लिए उन दिनों पुराने ढंग की खच्चर-गाड़ियाँ रहा करती थीं – धीरे-धीरे, ऊबड़-खाबड़ सड़क पर एक लम्बा सफर।

जिसने सुना, उसने माथा ठोक लिया। कानून के ठेकेदारों को कोसा, धर्म के नाम पर होने वाले इस अत्याचार और पाप के प्रति घृणा दर्शाई। बहुत-से लोगों के मन में गैलीलियो के लिए अत्यन्त सहानुभूति थी।

वृद्ध गैलीलियो गाड़ी में बैठकर एक कड़ाके की सुबह रवाना हुआ। रास्ते भर उसके प्राण संकट में रहे। दम अब निकले या तब। जैसे-तैसे रोम पहुँच गया।

रोम में उस पर मुकदमा चला। मुकदमा लगभग छः माह तक चला। उस पर बाइबल, धर्म और पुरातन परम्पराओं के विरोध में जाने का आरोप लगाया गया। आज तक उसके अलावा बिरले ही किसी ने ऐसे साहस का प्रदर्शन किया था कि धर्म में कही गई बातों के विरोध में जाएँ।

विवशता और मृत्यु को आलिंगन

गैलीलियो को मजबूर किया गया कि वह सब के सामने स्वीकार करे कि जो कुछ उसने लिखा है, दुर्भावनावश और गलत लिखा है। "वास्तव में, बाइबल और धार्मिक विश्वास सही है। सूर्य ही धरती का चक्कर लगाता है। पृथ्वी स्थिर है।"

गैलीलियो खून के आँसू रो पड़ा। वृद्धावस्था में भी इतनी पीड़ा, इतनी मानसिक और शारीरिक यातना से गुज़रना पड़ेगा, सही तथ्यों का खण्डन करना पड़ेगा, अपने स्वतंत्र-सच्चे विचार व्यक्त करने पर पाबन्दी लगेगी, इसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

कोई अन्य उपाय भी सामने नज़र नहीं आता था।

विशाल जनसमूह के समक्ष उसे घुटनों पर झुकना पड़ा। फिर धर्म में निहित वे सब बातें उसने दुहराईं, जो वे लोग चाहते थे।

अपने कुछ साथियों के साथ गैलीलियो बाहर आया। कहा जाता है, बाहर आते ही वह बोल उठा, "लेकिन सच तो यही है कि सूर्य स्थिर है और हमारी पवित्र धरती माता ही सूर्य का निरन्तर चक्कर लगा रही है।"

गैलीलियो की गतिविधियों पर पूर्णतः प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, उसे न तो किसी वैज्ञानिक प्रयोग करने की इजाज़त थी और न कुछ लिखने की। फिर भी 'आरसेट्री' की जेल में कैदी बने गैलीलियो ने एक और पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करके, चुपके-चुपके उसे ट्राकेंड भिजवा दिया।

जेल में गैलीलियो की दृष्टि चली गई थी। खुद की लिखी पुस्तक जब छपी तो उसे वह देख भी न सका। लेकिन मृत्यु-शैय्या पर लेटे-लेटे उसने वह छपी पुस्तक अपने हाथों से सहला ज़रूर ली, इतना सुख तो उसे प्राप्त हो ही गया। पुस्तक को स्पर्श करने का सुख, सौभाग्य।

"मेरी पीड़ा का फल है यह पुस्तक, सबसे अधिक मैं इसे प्यार करता हूँ," मरते हुए गैलीलियो गुनगुनाया।

हरिशंकर परसाई (1924-1995): हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंगकार थे। व्यंग रचनाओं के अलावा उपन्यास और लेख भी लिखे। उनका जन्म जमानी, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे हिन्दी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिक्षा सम्मान (मध्य प्रदेश शासन), शरद जोशी सम्मान आदि से सम्मानित।

सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहते हैं।

यह विज्ञान गल्प मित्र-बन्धु-कार्यालय, जबलपुर द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित हरिशंकर परसाई की किताब *वैज्ञानिक कहानियाँ* से लिया गया है। यह किताब तैलंगाना क्षेत्र की ग्यारहवीं कक्षा के लिए नॉनडिटेल्ड प्रथम भाषा की पाठ्यपुस्तक के रूप में आन्ध्र प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृति के तहत प्रकाशित की गई थी।

असावधानी की समझ

उमेश चौहान

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के दौरान मैंने 1978 से 2002 तक सौ से अधिक विज्ञान कार्यशालाओं में भाग लिया। कक्षा-6 से 8 तक करीब 400 छोटे-बड़े प्रयोगों को स्वयं करके देखा। हर वर्ष विज्ञान प्रशिक्षण या उन्मुखीकरण शिविर में भाग लिया, विज्ञान की बारीकियों को सीखा और सिखाया। मेरे छात्र-जीवन की विज्ञान की शिक्षा केवल हायर सेकण्डरी तक ही हो पाई थी। विज्ञान प्रशिक्षण में मैंने भौतिकी, रसायन तथा बायोलॉजी के प्रयोगों को सीखने में खूब रुचि ली। विभिन्न स्रोत दल सदस्यों के साथ प्रशिक्षक समूह का हिस्सा रहा। प्रयोगों को स्वयं करके देखा, पाठ्यपुस्तक में प्रयोगों को करने के ढंग, क्रम और विधि को लिपिबद्ध करके उनमें सुधार किए और आवश्यक चित्र बनाए। यह सब करते-करते मेरा आत्मविश्वास बढ़ता गया। प्रशिक्षणार्थी शिक्षक बी.एससी. हो या एम.एससी., मुझे उन्हें प्रशिक्षण देने में ज़रा भी संकोच नहीं होता था। कई बार विज्ञानविद शिक्षक प्रशिक्षण की कक्षा में प्रयोग करने में झिझकते थे। प्रायोगिक अनुभव न होने के कारण या तो उनसे गलतियाँ होती थीं या उन्हें अपने विषय वस्तु के ज्ञान पर भरोसा नहीं होता था।

मैं उन दिनों प्रशिक्षण शिविर के लिए विद्युत के माध्यम को पढ़ाने की तैयारी कर रहा था। विज्ञान किट में दिए बल्ब, होल्डर, सेल एवं तारों से श्रेणी एवं समानान्तर क्रम में विद्युत परिपथ बनाकर, उनसे प्रयोग करवाने का विचार था।

ऐसा कैसे और क्यूँ हुआ?

मैंने दो बल्बों को श्रेणी क्रम में जोड़ा तथा दो सेलों को भी श्रेणी क्रम में जोड़ा। परिपथ पूरा करने पर बल्ब जल रहे थे। तभी अचानक मन में विचार आया कि क्यों न एक सेल से दो बल्ब श्रेणी-क्रम में जोड़कर देखूँ। जब ऐसा करके देखा, श्रेणी-क्रम में एक बल्ब जल रहा था और एक बल्ब नहीं जला। मैं स्वयं भ्रमित हो गया कि ऐसा कैसे हो सकता है। मैंने न जलने वाले बल्ब को होल्डर से निकाला और उसकी जगह दूसरा बल्ब लगा दिया। आश्चर्य, दोनों बल्ब जल रहे थे। मैंने न जलने वाले बल्ब का फिलामेण्ट देखा, फिलामेण्ट ठीक था। मैंने जाँचने के लिए उसे दूसरे बल्ब होल्डर में लगाकर सेल से जोड़ा,

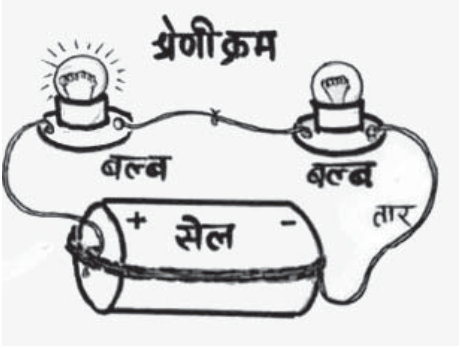

बल्ब जल रहा था। समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों हुआ।

मैंने पुनः इस बल्ब को उसी परिपथ में जोड़ा, बल्ब नहीं जला। मैंने बल्ब का क्रम बदला, यानी दाईं तरफ के बल्ब को बाईं ओर लगाया। परिणाम जस-का-तस था। मैंने 15-20 बल्बों को इसी तरह बदल-बदल कर परिपथ में जोड़ा। बहुत देर तक माथापच्ची करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि बल्ब के ऊपर 1.5 वोल्ट लिखा ज़रूर है लेकिन इनके फिलामेण्ट में हल्का-सा भी अन्तर होने पर श्रेणी-क्रम में एक बल्ब जलता है, एक बल्ब नहीं जलता। कारण भी स्पष्ट हुआ कि जिस बल्ब का फिलामेण्ट अधिक प्रतिरोध पैदा कर रहा है, वह गर्म होकर प्रकाश दे रहा है। इसकी तुलना में जिस बल्ब में कुछ कम प्रतिरोध है, उसका फिलामेण्ट विद्युत धारा तो प्रवाहित कर रहा है, किन्तु एक सेल की विद्युत ऊर्जा से वह इतना गर्म नहीं हो पा रहा है कि प्रकाश दे सके।

मैंने ऐसे पाँच सेट तैयार किए जिनमें दोनों बल्ब लगभग समान प्रकाश दे रहे थे तथा दूसरे पाँच सेट में एक बल्ब प्रकाश दे रहा था और एक नहीं। अगले दिन प्रशिक्षण में मैंने टोलियों को एक सेल के साथ दो बल्ब श्रेणी-क्रम में जोड़ने हेतु सामग्री दी। हर टोली को सामग्री देकर परिणाम लिखने को कहा गया। स्रोत दल हर समूह में जाकर प्रयोग देख रहा था एवं उनकी गतिविधियों व चर्चाओं को ध्यान से सुन रहा था।

मैंने देखा कि हर टोली ने परिपथ तो ठीक जोड़ा था किन्तु उनके तर्क एवं नतीजे चौंकाने वाले थे।

कुछ टोलियों के सदस्य न जलने वाले बल्ब को लेकर आए और कहने लगे, “सर, बल्ब फ्यूज़ है, बल्ब बदल दो!” कुछ बल्ब होल्डर को खराब बता रहे थे। कुछ ने विद्युत तार के टुकड़े को खराब बताकर तार बदला और कुछ टोलियों ने कहा, “धारा पॉज़िटिव से नेगेटिव की ओर बहती है, अतः सेल के पॉज़िटिव सिरे से जुड़ा बल्ब ज़्यादा विद्युत ऊर्जा मिलने के कारण जल रहा है। दूसरे बल्ब को कम ऊर्जा मिल रही है।”

कुछ टोलियों ने कहा, “नहीं, ऐसा नहीं है। हमारी टोली में नेगेटिव सिरे

से जुड़ा बल्ब जल रहा है, पॉज़िटिव तरफ का नहीं।" किसी का तर्क था कि "परिपथ में धारा समान रूप से बहती है, अतः दोनों बल्ब को समान ऊर्जा मिलती है, कुछ और गड़बड़ है।"

कक्षा में प्रयोग के दौरान दो टोलियों ने आपस में बल्ब बदलकर भी प्रयोग किए। फिर सभी के अवलोकन एवं तर्क बोर्ड पर लिखे गए।

आखिर गलती कहाँ हुई?

जिन लोगों ने बल्ब फ्यूज़ बताए थे, उनके बल्ब जाँचे गए, बल्ब फ्यूज़ नहीं निकले। बल्ब होल्डर और तार के टुकड़े भी ठीक थे। फिर गड़बड़ी कहाँ है, इस पर आपस में चर्चा होती रही। अन्त में, सामूहिक रूप से दो बल्ब जोड़कर श्रेणी-क्रम का परिपथ बनाया गया। बल्ब न जलने वाली टोली ने अपने बल्ब इस परिपथ में लगाए। जलने वाले बल्ब का परिपथ शॉर्ट किया गया। अब जो बल्ब फ्यूज़ बताया जा रहा था, वह जल उठा। बल्बों का क्रम बदलने पर भी वही बल्ब जल रहा था। तब जाकर स्पष्ट हुआ कि पॉज़िटिव सिरे से जुड़े बल्ब को ज़्यादा विद्युत ऊर्जा नहीं मिल रही है। पूरी कक्षा में किसी भी शिक्षक का ध्यान इस ओर नहीं गया कि श्रेणी-क्रम में एक बल्ब फ्यूज़ हो, तार टूटा हो, बल्ब होल्डर खराब हो तो परिपथ में धारा बहेगी ही नहीं। बल्ब के फिलामेण्ट में ज़रा-सा अन्तर होने पर श्रेणी-क्रम में धारा तो बह रही थी लेकिन फिलामेण्ट इतना गर्म नहीं हो पा रहा था कि प्रकाश दे सके।

विद्युत के प्रयोगों में परिपथ की स्पष्ट समझ होना बहुत ज़रूरी है। विद्युत के अध्यायों में अनेक प्रयोग इसलिए असफल या अरुचिकर रहे हैं क्योंकि हमने प्रयोगों को ध्यान से नहीं पढ़ा, उपकरण के विभिन्न चरणों को नहीं जाँचा और उसे बेकार कहने से नहीं झिझके।

एक बार प्रशिक्षण शिविर में भौतिकी के समूह को विद्युत मोटर बनाना और उसे चलाकर देखना था। कारण जो भी रहे हों, फीडबैक रिपोर्ट में आया कि विद्युत मोटर एक भी समूह में नहीं चली। मैंने तर्क दिया कि प्रयोग की सावधानियों पर ध्यान

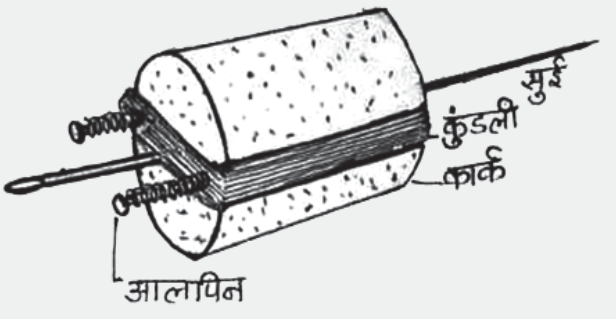

नहीं दिया गया होगा इसलिए ऐसा हुआ होगा।

गलतियों की फेहरिस्त

अगले दिन मुझे ही उस कक्षा में भेज दिया गया। कक्षा में जाने से पहले मैंने पिछले दिन शिक्षकों द्वारा बनाई गई समस्त विद्युत मोटर की जाँच की और त्रुटियों को समझने का प्रयास किया। उनमें मुझे इस प्रकार की त्रुटियाँ मिलीं-

- कॉर्क में लगी हुई सुई एकदम मध्य में नहीं थी।
- कॉर्क पर बनाई कुण्डली में ताम्बे के तार के सिरे पर से पॉलिश ठीक-से हटाया नहीं था।
- एक समूह ने कुण्डली के दोनों सिरे एक ही ऑलपिन से जोड़ रखे थे।
- कुण्डली कॉर्क के बीचोंबीच नहीं बल्कि एक ही तरफ लटक रही थी, स्वतंत्र घूमती नहीं थी।
- कुण्डली को करण्ट देने वाले बुश (एनेमल चढ़ा तार) के सिरों के ऊपर से पॉलिश नहीं हटाया गया था।
- कुण्डली को दोनों ओर लगे बुश से एक-साथ पॉज़िटिव तथा नेगेटिव करण्ट नहीं मिल रहा था।
- ऑलपिनों से बने X आकार के आधार इतने ऊँचे नहीं थे कि कुण्डली उन पर घूम सके।
- कुण्डली आधार के पटिए से टकरा रही थी।

अगले दिन मैंने उसी कक्षा में जाकर विद्युत मोटर न चलने के कारण और असावधानियों पर चर्चा की। पूरी कक्षा में पुनः विद्युत मोटर बनाने की सामग्री वितरित की गई। सभी प्रशिक्षणार्थियों से निवेदन किया गया, "हम चरणबद्ध तरीके से पूरी सावधानी रखते हुए एक बार फिर मोटर बनाएँगे।"

मोटर बनेगी भी, घूमेगी भी

सबसे पहले कॉर्क के मध्य कील या डिवाइडर की नोक से छेद किया क्योंकि एकदम बीच में छेद होना आवश्यक है। फिर कॉर्क के इस छेद में सुई घुसाई। इसके बाद कॉर्क के मध्य में दोनों ओर समान गहराई तक कुण्डली लपेटने के लिए खाँचे काटे गए। सुई से समान दूरी पर दो ऑलपिन खाँचे में घुसाई गईं। एनेमल लगे तार के एक सिरे को रेगमाल पेपर से रगड़कर एक ऑलपिन पर बाँधा गया। कॉर्क पर 50 लपेटे देकर तार की कुण्डली बनाई गई। तार के दूसरे सिरे को भी रेगमाल से साफ करके सावधानीपूर्वक दूसरी ऑलपिन पर लपेटा गया। तार की कुण्डली की जाँच की, करण्ट बराबर बह रहा था। कुण्डली को उँगली पर रख घुमाकर देखा गया, आवश्यक होने पर सन्तुलित किया गया। लकड़ी के पटिए पर कुण्डली घुमाते हुए X के आकार का स्टैण्ड बनाया गया। इसकी ऊँचाई इतनी रखी गई कि कुण्डली एकदम स्वतंत्र घूम सके। ऑलपिनों के माध्यम से कुण्डली में

करण्ट देने के लिए एनेमल लगे तार के दो टुकड़े साफ करके इतनी दूरी पर लगाए गए कि वे क्षैतिज अवस्था में कुण्डली आने पर एक-साथ स्पर्श करें और करण्ट दें। फिर इन्हें ध्यान-से स्थिर किया गया।

चुम्बक को कॉर्क की कुण्डली के दाएँ-बाएँ इस प्रकार रखा कि चुम्बक के विपरीत ध्रुव आमने-सामने रहें किन्तु कुण्डली को स्पर्श न करें। चुम्बक के ध्रुव कुण्डली की ऊँचाई पर स्थिर रहें। उपरोक्त सावधानियों का ध्यान रखते हुए जब विद्युत मोटर को दो सेलों को श्रेणी-क्रम में जोड़कर करण्ट दिया, तो अधिकांश टोलियों में मोटर घूमने लगी। जिन समूहों में दिक्कत आई, उनकी त्रुटियाँ सुधारी गईं।

उनके समूहों में भी मोटर अब ठीक-से घूमी। अब चुम्बक के ध्रुव बदलकर करण्ट दिया गया। मोटर के घूमने की दिशा बदल गई। सेल से दिए करण्ट को ध्रुव बदलकर करण्ट दिया। फिर से मोटर घूमने की दिशा बदल गई। अब पूरी कक्षा सन्तुष्ट थी और अपनी प्रायोगिक सफलता के कारण खुश भी। प्रयोग के अन्त में

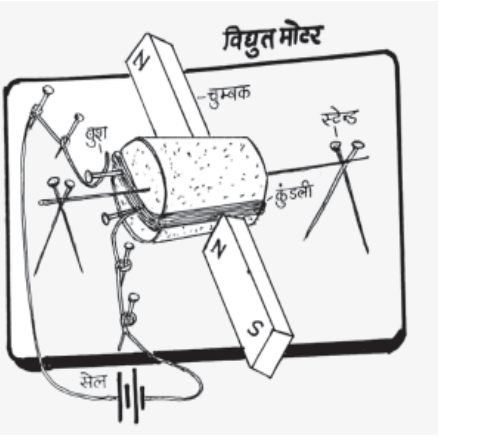

विद्युत मोटर के घूमने की दिशा में चुम्बक तथा विद्युत धारा की क्या भूमिका है, विद्युत मोटर के घूमने के सिद्धान्त आदि पर चर्चा हुई।

मैंने अपने अनुभवों से यह सीखा कि प्रयोग करने में सावधानी रखना कितना महत्वपूर्ण है। कई बार प्रयोग के परिणाम या आँकड़ों को प्राप्त करने के लिए हम सावधानियों को नज़रअन्दाज़ कर देते हैं जिससे हमें अपेक्षित सफलता नहीं मिलती और प्रयोगों के प्रति हमारी रुचि कम होने लगती है। एक अच्छे शिक्षक, अच्छे प्रशिक्षक को, प्रयोग करते वक्त सावधानियों का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है।

उमेश चौहान: होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के स्रोत शिक्षक रहे हैं। विज्ञान शिक्षण, उपकरण नवाचार व चित्रकला में विशेष रुचि।

सभी चित्र: उमेश चौहान।

सन् 1978 में विकसित *बाल वैज्ञानिक* के पहले संस्करण में विद्युत मोटर बनाने का यही तरीका दिखाया गया था। बाद में, अरविंद गुप्ता ने इसके आसान तरीके विकसित किए जिनका ज़िक्र *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित उनकी किताबों में है।

क्या समुदाय और पालक सचमुच गैर-ज़िम्मेदार हैं?

एक अनुभव

यशोदा विश्वास

सृजन समूह से जुड़कर आलेख पढ़ने, चर्चा का हिस्सा बनने के साथ ही साथी शिक्षकों से सीखने के मौके मिलते रहे हैं। साप्ताहिक चर्चा में स्कूल की परिस्थितियों से लेखों को जोड़कर कक्षा अनुभवों को साझा किया जाता है। साथ ही, सटीक सवाल पूछे जाते हैं जिससे सभी अपने अनुभवों पर विचार कर सकें। एक साप्ताहिक चर्चा के दौरान यह समस्या निकलकर आई कि बच्चे स्कूल कम आते हैं और वे स्कूल में रुचि भी नहीं लेते हैं। इस विषय पर समूह के शिक्षकों ने अपने अनुभव रखे और कहा कि बच्चे और अभिभावकों को लगता है कि स्कूल में पढ़ाई नहीं होती है। बच्चे स्कूल चले जाते हैं और बिना पढ़े ही वापस आ जाते हैं। बच्चों को स्कूल में पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया में रुचिपूर्ण ढंग से व्यस्त रखने और समुदाय के साथ बेहतर रिश्ता बनाने से बच्चों की उपस्थिति बढ़ती है। यह बात मुझे सही लगी। बच्चों को फिर से स्कूल की ओर मोड़ने के लिए मैंने उनके घर जाकर सम्पर्क किया ताकि बच्चों एवं समुदाय के साथ संवाद कायम किया जा सके।

मेरा स्कूल जिस गाँव में स्थित है वहाँ मुस्लिम बाहुल्य आबादी है। कुछ अन्य धर्मों के लोग भी यहाँ निवास करते हैं। इस गाँव के लोग अलग-अलग पेशे से जुड़े हुए हैं। कुछ काश्तकारी, मज़दूरी, स्वयं का व्यवसाय आदि करते हैं। गाँव में सबकी आर्थिक स्थिति एक-जैसी नहीं है। हमारे स्कूल में आने वाले ज़्यादातर बच्चे मज़दूर तबके के हैं जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। जिन परिवारों के पास संसाधन हैं या थोड़े पैसे हैं, वे अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेजते हैं। मैं चौथी कक्षा को पढ़ाती हूँ और मेरी कक्षा में 36 बच्चे नामांकित हैं।

19 फरवरी 2022

ठण्ड का मौसम था। शनिवार का दिन, स्कूल शुरू होने का समय 9:30 बजे का था और 10:30 बज चुके थे। कक्षा में केवल एक बच्ची आई थी, कुछ समय बाद दूसरी बच्ची को फोन करके बुलाया। कुछ बच्चों से फोन

बन्द होने के कारण बात नहीं हो पाई, तो कुछ के फोन उनके पिता या बड़े भाई के पास थे। किसी भी प्रकार से मैं उनसे जुड़ नहीं पा रही थी। पूरी कक्षा में दो ही बच्चे थे, दोनों का कहना था कि बाकी सभी बच्चे मटर तोड़ने जाते हैं इसलिए वे अनुपस्थित हैं। कक्षा में उपस्थित दोनों बच्चे मटर तोड़ने नहीं जाते। मैंने बच्चों से पूछा, "क्या तुम्हें उन सबका घर पता है?" बच्चों ने हामी भरी। मैंने प्रधानाध्यापक महोदय से अनुमति ली और दोनों बच्चों के साथ गाँव में अन्य बच्चों के घरों की ओर चल पड़ी ताकि बच्चों के स्कूल न आने का करण पता चल सके।

समुदाय भ्रमण

गाँव के लोग घर से बाहर आकर पूछ रहे थे, "भई, आज क्या हो गया?" इसका जवाब मेरे साथ चल रहे दोनों बच्चे खुद ही खुश होकर दे रहे थे कि "मैडम आज उन सभी बच्चों के घर जाएँगी जो स्कूल नहीं आते हैं।" कुछ बड़े-बुज़ुर्ग हमें रोककर कह रहे थे, "यह आपने बहुत अच्छा

किया, बच्चों में डर बना रहता है कि यदि स्कूल नहीं गए तो मैडम घर आ जाएँगी। अब तो सरकारी स्कूल बहुत अच्छा हो गया है।"

सबसे पहले हम हुमाबी के घर गए। एक दिन पहले ही मेरी उसकी मम्मी से फोन पर बात हुई थी। हुमा लगभग चार महीने से स्कूल नहीं आ रही थी। इस सम्बन्ध में उसकी मम्मी ने कहा कि "मैडम, हम हॉस्पिटल में थे क्योंकि उसके नाना की तबियत ठीक नहीं थी। हम कल ही घर पहुँचे हैं।" घर पहुँचने पर देखा कि हुमा कपड़े धो रही है और मुझे देखते ही शरमा गई और कहने लगी, "मैडम, मैं तो कल रात ही आई हूँ।" मैंने कहा, "कोई बात नहीं, कपड़े मम्मी धो लेंगी, तुम अभी मेरे साथ स्कूल चलो।" मैं इन्तज़ार करने लगी और वह तैयार होकर मेरे साथ स्कूल चल दी।

फिर हम गुलिस्ताँ के घर गए। उसकी मम्मी गोबर के कण्डे थाप रही थीं और गुलिस्ताँ मटर तोड़ने गई हुई थी। पूछने पर उसकी मम्मी ने आश्चर्य से पूछा, "दीदी, आज स्कूल बन्द नहीं है क्या? बच्चे तो बता रहे थे कि आज स्कूल बन्द है, तभी वह मटर तोड़ने चली गई और उसके साथ उसकी छोटी बहनें भी गई हैं।" फिर उन्होंने आगे कहा, "मेरी बेटी की पढ़ने-लिखने में बहुत दिलचस्पी है, वह कभी छुट्टी नहीं करना चाहती है। मुझे लगा कि आज उसकी छुट्टी है तभी दोनों बच्चों को पास के खेत में मटर तोड़ने भेज दिया।" उन्होंने यह भी कहा कि अब से वे बच्चों को नियमित रूप से स्कूल भेजेंगी।

फिर मैं गुलफिज़ा के घर गई। तभी वह खेतों की तरफ से दौड़ती हुई आई और तैयार होकर स्कूल के लिए चल दी। गुलफिज़ा पढ़ने-लिखने में अच्छी है। पहले वह ग्रेट इण्डियन पब्लिक स्कूल में पढ़ती थी, सितम्बर के महीने से हमारे स्कूल में दाखिला लिया है।

मटर तोड़ें या स्कूल जाएँ?

इसके बाद हम इकरा के घर गए। इकरा पड़ोस में खेलने गई थी। उसकी मम्मी से कहकर उसे बुलवाया। वह मुझे देखकर खुश हो गई और बोली, "मैडम, बच्चे तो कह रहे थे कि आज छुट्टी है!" शायद वह अपने बचाव के लिए सफाई दे रही थी, इसलिए मैंने उससे कहा, "तुम तो मुझसे फोन करके पूछती रहती हो, तो एक बार फोन करके ही पूछ लेती।"

मैंने इन सभी बच्चों को स्कूल भेज दिया और आगे रुखसार और रियाज़ के घर गई। घर में उनके पापा थे। मम्मी कहीं आसपास गई थीं। सो मैंने उनके पिताजी से ही पूछ लिया, "रुखसार कहाँ है?" उन्होंने कहा, "वह तो स्कूल गई है।" इस पर मैंने कहा, "वह तो स्कूल में नहीं है और

कई दिनों से स्कूल नहीं आ रही है, तभी तो घर देखने आई हूँ। पड़ोस के लड़के कह रहे थे कि वे सब मटर तोड़ने जाते हैं और रोज़ाना जाते हैं।" इन बातों के बारे में रुखसार के पिताजी को पता नहीं था क्योंकि वे काम के सिलसिले में अकसर बाहर ही रहते हैं। उसकी मम्मी बच्चों को उनकी बड़ी मम्मी के साथ मटर तोड़ने भेज देती हैं। उन्होंने कहा, "मैडम, आगे से ऐसा नहीं होगा, वादा करता हूँ।" मैं जहाँ भी जा रही थी, बड़े और बुज़ुर्ग भीड़ लगा रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे मदारी कोई खेल दिखा रहा हो।

आरिश के घर गई, वहाँ ताला लगा हुआ था। आस-पड़ोस से पूछने पर पता चला कि सभी लोग मटर तोड़ने गए हैं। उनसे मिलना मुमकिन नहीं है क्योंकि वे सुबह जाते हैं और शाम को आते हैं। आरिश का घर एक कमरे का था, आगे थोड़ा बरामदा बना हुआ था। दीवारों में दरारें पड़ी थीं और दरवाज़ा भी लकड़ी का नहीं था। बाहर एक चूल्हा बना हुआ था और पास में कुछ घास-फूस और लकड़ियाँ इकट्ठा करके रखी थीं। ऐसा लग रहा था कि यदि बारिश हो गई तो रात का खाना बनाना भी मुश्किल हो जाएगा। वैसे आरिश पढ़ने-लिखने में ठीक है, साथ ही ज़िम्मेदारी का भाव भी प्रदर्शित करता है। उसके मम्मी-पापा एक-दूसरे से अलग रहते हैं। जब वह कक्षा-2 में पढ़ता था तब उसके पापा उसे स्कूल से दो-तीन बार उठाकर भी ले गए थे। आरिश की मम्मी आर्थिक और मानसिक रूप से परेशान और बदहाल रहती हैं। उनकी स्थिति बहुत दयनीय है। आरिफ, तफसीर, आदिव, शानूमबी, अंजुम, सायबा, फिज़ा, फारुख अली, अनम, जुलेखा, मैसबीन – ये सभी मटर तोड़ने गए हैं। किसी के घर में ताला लगा हुआ है तो किसी के घर में बुज़ुर्ग ही मिले।

21 फरवरी 2022

सोमवार के दिन अधिकतर बच्चे समय से स्कूल आ गए थे। जिनके घर में ताला लगा हुआ था, वे भी आए थे। कुछ बच्चे अभी भी स्कूल नहीं आए, उनके घर जाने का भी कोई फायदा नहीं हुआ। जो बच्चे स्कूल में उपस्थित थे, उनके साथ बात की गई। फारुख ने बताया कि मटर तोड़कर उसने 4000 रुपए कमाए हैं। उनके परिवार ने कोविड के कारण पिछले छह महीने से मकान का किराया नहीं दिया है। इसके अलावा कुण्डे के त्योहार* पर खर्च के लिए 150 रुपए घर पर दिए हैं।

रुखसार और रियाज़, दोनों भाई-बहन हैं। उन्होंने बताया, "मैडम, दो बोरी मटर तोड़ने से दो सौ रुपए मिल जाते हैं। हम अपनी बड़ी मम्मी के साथ मटर तोड़ने जाते हैं। हमें पचास रुपया मिलता है जिसे हम अपनी मम्मी को दे देते हैं।"

23 फरवरी 2022

आज एक बार फिर मैं प्रीती और आँचल के घर गई। वहाँ उनकी दादी, मामा, मामी, मम्मी, दीदी से मिली। उनसे बच्चों के स्कूल न आने का कारण जानना चाहा कि कहीं उनके मन में स्कूल की प्रक्रियाओं एवं पढ़ाई-लिखाई से सम्बन्धित कोई सवाल तो नहीं है। सभी लोग एक सुर में बोले, "मैडम, आजकल तो अपने स्कूल में प्राइवेट से भी बढ़िया पढ़ाई हो रही है। हमें लेबर नहीं मिल रहे हैं इसलिए हमने बच्चों को घर पर ही रोक लिया है।" आँचल और प्रीती ने अगस्त माह में हमारे स्कूल में दाखिला लिया था। इससे पहले वे प्रायवेट स्कूल में पढ़ती थीं। लॉकडाउन के कारण उनका स्कूल बन्द हो गया था।

24 फरवरी 2022

गुलफिज़ा ने बताया कि "मटर तोड़कर 2100 रुपए मिले जिससे कुण्डे के लिए बाज़ार से खरीददारी की। थोड़े पैसे रख दिए हैं, उससे मामा की बारात के समय नए कपड़े खरीदेंगे। हम पैसे इकट्ठे करके अम्मी को दे देते हैं। जब हमारे घर में कोई परेशानी होती है तब उन पैसों से अम्मी को घर चलाने में मदद मिल जाती है।"

26 फरवरी 2022

फिज़ा और अनम का कहना है, "मैडम, हमें स्कूल आना अच्छा लगता है लेकिन मम्मी कहती हैं कि कुछ दिन मटर तोड़ लो, फिर स्कूल चली जाना।" दोनों ही बच्चे पढ़ने में ठीक हैं। अनम डांस भी अच्छा कर लेती है।

4 मार्च 2022

जुलेखा और मैसबीन, दोनों बहनें

* *कुण्डे का पर्व हज़रत इमाम जाफर सादिक रह. अलैह की याद में मनाया जाता है। मान्यता है कि इस दिन खीर-पूड़ी बनाकर कुण्डे में रखकर माँगी गई मुराद पूरी होती है।*

हैं। इनका कहना है, "मम्मी कहती हैं कि मटर का सीज़न तीन महीने का होता है, अभी मटर तोड़ने का काम करो बाकी फिर सालभर तो स्कूल ही जाना है। हमारा मकान कच्चा है। जब मटर तोड़ने के पैसे मिलेंगे तब हम ईंटें खरीदेंगे।" इनके पापा टुक-टुक चलाते हैं। एक्सीडेंट के कारण उनकी टाँग टूट गई थी तब उनकी पत्नी और बच्चे कढ़ाई का काम करके अपना परिवार चलाते थे।

एक बार फिर आरिश के घर गई। हमेशा की तरह उनके दरवाज़े पर ताला मिला। मैंने फोन पर उसकी मम्मी से बात करने की कोशिश की लेकिन उनसे भी बात नहीं हो पाई।

समुदाय सम्पर्क से बनी समझ

अब बच्चे फिर से स्कूल आने लगे हैं। उनकी वार्षिक परीक्षा हुई। उत्तर पुस्तिकाएँ देखकर लगा जैसे मैंने जंग जीत ली है। इस सर्वे और सम्पर्क से समझ में आया कि ज़्यादातर बच्चे अपने परिवार के प्रति संवेदनशील हैं और अपनी तरफ से मदद कर रहे हैं। परन्तु यह भी सही है कि इस कारण उनकी पढ़ाई बाधित होती है।

इस सामुदायिक सम्पर्क के पहले लगता था कि बच्चे और उनके परिवार के लोग कितने गैर-ज़िम्मेदार हैं। हम शायद एक पक्ष ही देख रहे थे और दूसरा पक्ष हमसे एकदम अछूता रह जाता था। एक शिक्षक को बच्चों के आर्थिक-सामाजिक पक्ष को भी समझना ज़रूरी है। स्कूल और समुदाय के बीच जुड़ाव बना रहना चाहिए जिससे हम समुदाय को समझ सकें और समुदाय का स्कूल के प्रति विश्वास बना रहे।

यशोदा विश्वास: राजकीय प्राथमिक विद्यालय, कुरैय्या, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड में सहायक अध्यापिका। बच्चों को रचनात्मक व कलात्मक ढंग से पढ़ाना पसन्द है। जीवनी, आत्मकथा, जीवन वृत्तान्त पढ़ने में रुचि।

सभी चित्र: बंसी: जूनागढ़ की रहने वाली बंसी ने गांधीनगर से दाँतों की शल्य चिकित्सा की पढ़ाई करने के बाद TISS, मुम्बई से प्रारम्भिक शिक्षा में एम.ए. की पढ़ाई की। वह एक चित्रकार बनना चाहती हैं और संवेदनशील एवं अर्थपूर्ण बाल साहित्य की रचना करना चाहती हैं - खासकर गुजरात की गैर-अधिसूचित और 'बोली' भाषाओं में। वर्तमान में *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं।

वो बच्चे हैं उन्हें बात करने दो

राजाबाबू ठाकुर

अक्सर शिक्षकों द्वारा संसाधनों की कमी एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में देखी जाती है। कई शिक्षक इसके समाधान के रूप में बहुत सारी गतिविधियाँ करते हैं एवं टीएलएम का भी निर्माण करते हैं और अपने स्कूल के बच्चों के साथ उनके आधार पर काम भी करते हैं। इस तरह की गतिविधियाँ करने से उनका सीखना आसान और बेहतर बनता है। लेकिन ऐसे उदाहरण बहुत कम निकलकर आएँगे और जब हम शिक्षकों के समक्ष इस तरह के प्रयास करने की बात रखते हैं तो जवाब मिलता है कि "इस तरह के काम के लिए समय की माँग काफी रहती है और हमें पाठ्यक्रम भी पूरा कराना होता है।"

चलिए, मान लेते हैं कि यह सही है, लेकिन जब हम उनसे 'बच्चों से बातचीत' करने की बात करते हैं तब भी वे यह कहने से नहीं कतराते कि "अरे सर! अगर बच्चों को बात करने

का मौका दे देंगे तो वे सिर्फ बातें ही करेंगे, हमारे सिर पर बैठ जाएँगे। बच्चे तो कोरे कागज़ जैसे होते हैं, वे वही सीखेंगे जो हम उन्हें सिखाएँगे।" इस तरह के बहुतेरे जवाब मिलते हैं। हाँलाकि, बच्चों से बातचीत करने में न कोई अतिरिक्त खर्च लगता है और न ही अलग से समय देना पड़ता है।

कृष्ण कुमार जी भी अपनी पुस्तक *बच्चे की भाषा और अध्यापक* में लिखते हैं कि "ऐसे अध्यापक जो बच्चों को बात नहीं करने देते, वे किताबों व अन्य सामग्री के लिए पैसों की कमी की शिकायत करने के हकदार नहीं हैं। वे पहले ही एक मूल्यवान साधन खो रहे हैं जिसके लिए रुपयों की कोई ज़रूरत नहीं है।"

हमारे शिक्षक, यहाँ तक कि हम बड़े भी बच्चों के साथ या बच्चों के बीच की बातचीत को कुछ इसी नज़रिए से देखते हैं। बातचीत बच्चों में बहुत-से कौशलों को विकसित करने का बहुत ही अच्छा माध्यम होती है। केवल इसके माध्यम से बच्चों में अभिव्यक्ति का कौशल, तार्किक कौशल, बारीकी-से अवलोकन करने का कौशल, और भी न जाने कितने कौशल हम विकसित करवा सकते हैं। इस सन्दर्भ में मैं एक बच्चे के साथ बातचीत का उदाहरण यहाँ साझा कर रहा हूँ।

मैंने एक बार इस विषय पर एक शिक्षिका से बात की कि हम अपनी कक्षा में शिक्षण की शुरुआत बच्चों से बातचीत के माध्यम से करते हैं, जिससे बच्चों का आपके साथ जुड़ाव बनेगा और स्कूल के साथ जुड़ाव बनेगा। बच्चों को अच्छा लगेगा कि उनकी बातों को भी यहाँ सुना जाता है। साथ ही, हम जान पाएँगे कि हमारे बच्चों को क्या-क्या जानकारी है और उस जानकारी का उपयोग हम कक्षा में कैसे कर सकते हैं एवं कैसे उस जानकारी को और समृद्ध कर सकते हैं। इतनी सब बातचीत के पश्चात् शिक्षिका बोलीं, "सर, इन बच्चों से क्या ही बात करेंगे।" तब मैंने शिक्षिका की अनुमति लेकर पास बैठे हुए बच्चों में से पहली कक्षा के एक बच्चे सूरज से बातचीत की। सूरज उस दिन पहली बार स्कूल आया था और शिक्षिका ने उसे वर्णमाला लिखने को दी थी। मैंने बात करने के लिए सूरज को इसलिए चुना क्योंकि शिक्षिका का ऐसा कहना था कि वह कभी स्कूल नहीं आता।

सूरज के साथ बातचीत

मैं: आपका नाम क्या है?

सूरज: सूरज।

मैं: आज आपने सुबह से उठकर क्या-क्या किया?

सूरज ने इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया, पेन से खेलता रहा। शायद डरा हुआ था, या मेरी भाषा को समझ नहीं पा रहा था। इसलिए मैंने उसी की भाषा, बुन्देलखण्डी में कोशिश करने की सोची।

मैं: आज सुबेरे से उठके तुमने का-का करो?

सूरज: हम उठे फिर हमने मों धोओ, चाय पी और फिर हमने रोटी खाई।

मैं: सब्जी का बनी ती?

सूरज: आलू।

मैं: अच्छा! जे आलू कहाँ से आत हैं?

सूरज: पापा लेआत हैं बजार से।

मैं: और बजार में कहाँ से आत?

सूरज: इतइं से जात है, गाँव से।

मैं: तो फिर गाँव में कहाँ से आत हैं?

उसने दो बार अपनी बात दोहराई, 'शहर से गाँव में, गाँव से शहर में'। शायद वो मेरे प्रश्न को समझ नहीं पा रहा था। तब मैंने कुछ इस प्रकार पूछा...

मैं: मतलब गाँव में किते से आत हैं?

सूरज: उंगत हैं ज़मीन में उते।

मैं: अच्छा! जमीन में किते, ऊपर उंगत हैं कि नेंचे?

सूरज: उतई उंगत हैं जमीन में।

(शायद सूरज फिर से समझ नहीं पाया)

मैं: पेड़ जैसे उंगत कि जे बेल जैसे?

इमली के पेड़ व वहीं लगी एक बेल की ओर इशारा करते हुए पूछा...

सूरज: नईं, ऐसो नईं उंगत। ब ककरी जैसो लगत है।

(यहाँ मुझे लगा कि या तो वह मेरी बात को समझ नहीं पाया था या फिर उसके पास अपनी बात को रखने के लिए शब्द नहीं थे, तब मैंने अन्य तरीके से जानने का प्रयास किया।)

मैं: अच्छा, जा बेल काये की है?

सूरज: कदुआ की।

(तभी एक छोटी-सी बच्ची कहती है...)

बच्ची: नईं सर, तोरई की है।

मैं: अच्छा, जा तोरई की है। तो ककरी की बेल भी है का इते?

बच्ची: (इशारे से) है, बा है।

मैं: अच्छा, जा बेल ककड़ी की है, कैसे जाना?

सूरज: फूल से।

मैं: सूरज, का तुमे भी लगत है कि जा बेल ककरी की है?

सूरज: हाँ।

मैं: तो अब बताओ, आलू जमीन के भीतर उंगत के ऊपर?

वह इस बार भी नहीं समझा। तब मैंने पूछा...

आलू प्याज जैसो लगत के ककरी जैसो?

सूरज: प्याज जैसो।

(मुझे समझ आया कि कई बार हमें बच्चों से एक ही बार में प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। ऐसे में उन्हें विभिन्न प्रकार से उत्तर देने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

मैं: तुमने आलू-प्याज के पौधे देखे हैं?

सूरज: हाँ, सर उते लगे ते।

मैं: आलू-प्याज जैसे और का का लगत है?

सूरज: लेसन बी लगत है।

मैं: अच्छा, अदरक देखा है, बो कैसे लगत?

सूरज: ऐसइ।

मैं: अभी तुम कै रये ते, तुमने चाय पी हती सुबेरे। चाय कैसे बनत है?

सूरज: शक्कर पत्ती डार दो और बन जात।

मैं: अच्छा, जा शक्कर किते से आत है?

सूरज: बजार से।

मैं: और बजार में किते से आत?

सूरज: उते के दूकानदार दूसरे बजार से लेआत हैं।

मैं: दूसरे बजार में किते से आत हुइए?

सूरज: बनत है।

मैं: कैसे बनत है?

सूरज: गन्ना की बनत है।

मैं: अरे बा यार सूरज, तुमे तो सब पतो है। अच्छा, गन्ना को और का बनत? (सूरज कुछ नहीं बोला)

मैं: गुड़ बी तो बनत है और गन्ना को रस हम पियत भी तो हैं। अच्छा, गन्ने को रस हम कबे पियत हैं?

सूरज: गर्मियों में पियत हैं।

मैं: अच्छा, अबे काये नई पियत? अबे बी तो पी सकत हैं।

सूरज: अबे गन्ना होतई नइये। बे तो जबै होत हैं, सो जबई पियत हैं।

(इतनी बात करके सूरज ने कहा कि "अब हमें भूख लगी है, हमें घर जाना है," और शिक्षिका की अनुमति से वह घर चला गया।)

और इस प्रकार मेरी बात खत्म हुई। मैंने सूरज से आगे भी इसी तरह की बातचीत करने का कहकर जाने दिया। इसके बाद मैंने शिक्षिका से बात जारी रखी, "देखिए मैडम, हम लोग सोचते हैं कि बच्चों को अभी कुछ नहीं पता होगा पर उसे कितना कुछ पता है। जब उसकी इन जानकारियों को हम अपनी कक्षा का हिस्सा बनाएँगे तो न केवल बच्चा स्कूल से जुड़ाव बना पाएगा बल्कि शिक्षक के साथ भी अच्छे सम्बन्ध बनेंगे और जो समस्या है, बच्चे के स्कूल न आने की, वह भी शायद नहीं रहेगी। एन.सी.एफ. व लर्निंग आउटकम भी तो शुरुआत में इसी तरह से काम करने का कहते हैं और इससे शिक्षक का काम भी आसान होगा। अभी देखिए, ये बच्चा कितना खुश है।" अब शिक्षिका ने भी इस पर सहमति दी और बच्चों को बात करने देने का और बच्चों से बातचीत करने का वादा भी किया।

बात जारी रखते हुए मैंने शिक्षिका से कहा, "इस प्रकार बातचीत के माध्यम से काम करते हुए आपको अपनी कक्षा के लिए भी बहुत-सी जानकारियाँ मिलेंगी जिनका इस्तेमाल आप बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने में भी कर सकती हैं।" इस पर शिक्षिका ने खुशी-खुशी हामी भरी और बाद में बच्चों के साथ कविता, कहानी, चित्र आदि पर बातचीत को अपनी कक्षा प्रक्रियाओं का हिस्सा बनाया।

सभी विषयों के पहले और बाद में बात करने से बच्चों की उस विषय पर समझ भी बनती है, साथ ही, वे पढ़ी जा रही विषयवस्तु से जुड़ाव भी बना पाते हैं। इसी प्रकार कुछ और बच्चों की बातचीत को भी हम यहाँ देख सकते हैं जिससे बच्चों की विद्यालय-पूर्व समझ को जानने में और मदद मिलेगी।

पुष्पेन्द्र के साथ बातचीत

एक अन्य स्कूल की बातचीत मैं यहाँ रखना चाहूँगा। एक दिन मैं कक्षा-2 में एक चित्र पर बातचीत कर रहा था। चित्र एनसीईआरटी की किताब से था जिसमें दो व्यक्ति, तीन बच्चे और एक पेड़ बना हुआ था।

उसपर कुछ इस प्रकार बातचीत हुई...

मैं: चित्र में दिखाई देने वाले व्यक्ति कौन हो सकत हैं?

पुष्पेन्द्र: (व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए) यह किसान है। (उसने अपने तर्क भी दिए) उनने कपड़े ऐसे पहने हैं और बो खेत में काम कर रये हैं।

मैं: किसान का काम करत हैं?

पुष्पेन्द्र: फसल उगात हैं और उसकी रखवाली करत हैं।

मैं: कौन-कौन-सी फसल उगात हैं?

पुष्पेन्द्र:- पिसी (गेहूँ), चना, मसूर, सोयाबीन और पेड़ भी लगात हैं।

मैं: फसल कब और कैसे बोई जात है और ए दौरान का-का होत है?

पुष्पेन्द्र: अबै तो पिसी और चना लगे हैं जो ठण्ड में बोए जात हैं। जिनके लाने सबसे पहले ट्रेक्टर से पंजा लगात हैं, फिर बोनी करत हैं, फिर पानी देत हैं, फिर कछु दिन में काट लेत हैं।

मैं: पानी कितनो देत हैं?

पुष्पेन्द्र: पिसी में दो-तीन बेर देत हैं, मनो चनों में एकई बेर देत हैं।

मैं: पिसी में जादा पानी काय देत हैं जबकि चनों में कम।

पुष्पेन्द्र: बस, देने पड़त है।

इस पर मैंने उसे घर से पूछकर आने को कहा।

मैं: सोयाबीन कबे लगत है?

पुष्पेन्द्र: सोयाबीन तो बारिस में लगत है।

मैं: का हुइये, अगर हम सोयाबीन को अबै लगा दें?

(पुष्पेन्द्र इस सवाल का जवाब नहीं दे सका।)

तब मैंने उसे फसलों के विशेष मौसम के बारे में, सेब हमारे यहाँ क्यों नहीं होते आदि के बारे में उदाहरण देते हुए समझाया और इस प्रकार हमारी बातचीत समाप्त हुई। इसके बाद शिक्षिका व मैंने मिलकर बातचीत में आए कुछ शब्दों की पहचान कराई, शब्द-पहचान के बाद उन्हीं में से एक शब्द चुनकर उससे अक्षर-पहचान कराई। अक्षर-पहचान के बाद अक्षर से शुरू होने वाले शब्दों का जाल बनाया और उन शब्दों की पहचान पर कार्य किया। इस तरह हमने बच्चों के साथ पढ़ने-लिखने पर काम किया जिसका प्रभाव भी बच्चों में जल्दी ही देखने को मिला।

हम न बताएँ लेकिन वे जानते हैं

अगर हम इन दोनों ही बच्चों के द्वारा बताई गई बातों का विश्लेषण करें, तो बहुत ही स्पष्टता से समझ आता है कि हमें बच्चों की बातचीत या बच्चों के साथ बातचीत के सन्दर्भ में हमारी सोच को बदलने की ज़रूरत है। कैसे एक बच्चा जिसने अभी स्कूल का मुँह तक नहीं देखा, न केवल

विभिन्न प्रकार के फलों, सब्ज़ियों व अनाज की खेती के बारे में जानता है बल्कि उसे मार्केट के बारे में भी पता है कि तमाम प्रकार की चीज़ें कहाँ से, कितने लोगों के माध्यम से एक ग्राहक तक पहुँचती हैं। इसके साथ ही उसे यह भी पता है कि गन्ने से शक्कर जैसे उत्पाद कैसे बनते हैं। दूसरा बच्चा भी बिना पढ़े खेती के बारे में इतनी सारी जानकारी रखता है। बच्चे को यह पता था कि किस मौसम में कौन-सी फसल बोई जाती है, वह कैसे बोई जाती है, किस फसल को कम पानी की ज़रूरत होती है और किस फसल को ज़्यादा।

अगर हम इसी प्रकार सभी बच्चों से बातचीत करें तो न जाने कितनी जानकारी निकलकर सामने आएँगी और इन जानकारियों का उपयोग हम पढ़ने-लिखने में कर रहे होंगे। इस तरह की बातचीत एक अच्छा संसाधन तो है ही, साथ ही, यह स्कूल से जुड़ी बहुत सारी समस्याओं को भी हल कर रही होगी - बच्चों का स्कूल से डरना, स्कूल से भागना और बीच में ही स्कूल छोड़ देना; वह भी बिना किसी प्रकार के अतिरिक्त वित्तीय खर्च और समय के। लेकिन हम इस बहुमूल्य संसाधन का कभी उपयोग ही नहीं करते क्योंकि हमें लगता है कि बच्चे तो कोरे कागज़ होते हैं, उन्हें तब तक कुछ आ ही नहीं सकता जब तक हम उन्हें नहीं सिखाएँगे।

आम तौर पर धारणा यह होती है कि बच्चे उतना ही जानेंगे जितना हमने उन्हें सिखाया है। तो उनसे बात

करके क्यों अपना समय बर्बाद किया जाए जबकि इस समय का सदुपयोग करके हम अपना पाठ्यक्रम पूरा करा सकते हैं। लेकिन यदि हम पाठ्यक्रम के अध्यायों को ही ध्यान से देखें, तो क्या हमारे पाठ भी बच्चों से बात करने को नहीं कहते? अगर हम कक्षा-1 की पाठ्यपुस्तक के पहले ही अध्याय को देखें, तो उसमें भी फुटनोट में साफ तौर पर लिखा होता है कि अमुक विषय पर बच्चों से बात करें और उनके विचारों को जानें। यही नहीं, अगर हम कक्षा एक से तीन के हिन्दी के सीखने के प्रतिफल देखें, तो पाएँगे कि बहुत सारे सीखने के प्रतिफल बच्चों से बातचीत करने से ही पूरे हो रहे होते हैं। हमें अपने नज़रिए को बदलना होगा क्योंकि यही बातचीत न केवल बच्चों को आप से और स्कूल से जोड़ रही होगी, बल्कि बच्चों को संसार को देखने के नज़रिए दे रही होगी। बच्चों द्वारा अपनी बातों पर दिए तर्क और उनके द्वारा पलटकर पूछे गए सवाल, दोनों कक्षा की शिक्षण प्रक्रिया में बहुमूल्य संसाधन हो सकते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में एक बात कही गई है जिसे मैं यहाँ रखना महत्वपूर्ण समझता हूँ कि 'सीखना, एक प्रकार से अलग-थलग गतिविधि हो गई है जो बच्चों को जीवन्त तरीके से जीवन से जोड़ने को प्रोत्साहित नहीं करती'। हमें यह प्रयास करना चाहिए कि बच्चे घर और स्कूल को जोड़कर देखें, स्कूल में सीखे हुए का इस्तेमाल घर में और घर के अनुभवों का इस्तेमाल स्कूल में सीखने के लिए करें।

राजाबाबू ठाकुर: एकलव्य, केसला, होशंगाबाद में शिक्षक-शिक्षा के काम में एसोसिएट के रूप में कार्यरत। घूमने और पढ़ने में रुचि।

सभी चित्र: हीरा धुर्वे: चित्रकला में गहरी रुचि। साथ ही, 'विहान ड्रामा वर्क्स' रंगमंच समूह व 'मार्गी बैंड' से जुड़े हुए हैं। भोपाल में रहते हैं।

एक नया विद्यालय, नई कोशिश बच्चों की नज़र से

फ़राह फ़ारूक़ी

पोखरामा फ़ाउण्डेशन अकैडमी के साथ मेरा सफ़र 2021 से शुरू हुआ। एक साथी और उस्ताद, प्रोफ़ेसर अनिल सेठी, जो फ़ाउण्डेशन के डायरेक्टर हैं, उन्होंने पूछा कि क्या मैं उनके स्कूल के बच्चों से मिलना चाहूँगी। चूँकि उस वक़्त कोरोना का दौर चल ही रहा था तो मैंने तजवीज़ दी कि मैं दिल्ली से इंटरनेट पर सामाजिक-सियासी ज़िन्दगी मज़मून की कुछ कक्षाएँ ले सकती हूँ। जब कक्षाएँ लेना शुरू किया तो बच्चों को पढ़ाने में मज़ा आने लगा, और सीखने को भी काफ़ी मिल रहा था। इस तरह सातवीं जमात को यह विषय पूरे साल पढ़ाया।

बच्चों का लगातार इसरार रहा कि मैं पोखरामा आऊँ। ऐसा मज़मून पढ़ा रही थी कि दूर बैठकर पढ़ाना वैसे ही बेईमानी लग रहा था। यह स्कूल पटना से 150 कि.मी. दूर, लखीसराय ज़िले के पोखरामा गाँव में स्थित है। किसी तरह नवम्बर, 2022 की शुरुआत में एक हफ़्ते के लिए स्कूल पहुँची। बच्चों की खुशी का ठिकाना नहीं था। स्कूल के बारे में काफ़ी सुना तो था लेकिन इन्तज़ामिया, अध्यापकों और स्कूल से जुड़े तमाम लोगों की मेहनत देखकर लगा कि यह बेहतरीन पहल है। सो, इसके बारे में लिखने का फ़ैसला किया।

इस पहल के बारे में जो मैं दर्ज कर रही हूँ, कोशिश की है कि बच्चों की नज़र से देखते हुए पेश करूँ। इस लेख को लिखने के दो मक़ासिद हैं। पहला – शिक्षा से जुड़ी एक नई कोशिश के बारे में जानकारी देना। दूसरा – नज़रिए कैसे ज़मीनी हक़ीक़त से जुड़ते हैं, यह दिखाना।

स्कूल की बुनियाद

पहले यह बात कर लेते हैं कि स्कूल की शुरुआत कैसे हुई। अजय सिंह, जो इसी गाँव से हैं, पढ़-लिखकर अब अमरीका में दवाओं का व्यापार करते हैं। उनकी तमन्ना थी कि अपने गाँव के बच्चों के लिए कुछ

कर पाएँ। कई बच्चों की तो ज़ाती तौर पर मदद की। उनका मानना था कि अगर वे पढ़ सकते हैं, तो अन्य बच्चे भी पढ़ सकते हैं, बस मौक़ा मिलना चाहिए।

सन् 2016 में घर के ही चार लोगों (अजय, निष्ठा, ज्ञान, गरिमा) ने मिलकर पोखरामा फ़ाउंडेशन बनाया। शुरू में सोचा कि बच्चों को वज़ीफ़ा देंगे और गाँव के पास चल रहे बेहतर समझे जाने वाले एक निजी स्कूल में दाख़िला कराएँगे। यह करने के लिए उन्होंने गाँव में एक आम सभा बुलाई। सोचा था कि दस बच्चों से शुरुआत करेंगे। लेकिन सभा में तो भीड़ उमड़ आई। यह देखकर वज़ीफ़े की संख्या दस से फ़ौरन ही चालीस कर दी गई।

2016 से 2019 तक चालीस बच्चों की फ़ीस और बस के पैसे देने का सिलसिला चला। वे जब भी गाँव आते तो इन बच्चों से मुलाक़ात करते और कोशिश होती कि इन्हें अलग से भी पढ़ाया जाए। इसके लिए कई विशेषज्ञों को बुलाकर कार्यशालाएँ आयोजित करवाई जातीं। सन् 2018 में इन चारों के उस्ताद अनिल सेठी जी, जो दिल्ली यूनिवर्सिटी, अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी और एनसीईआरटी से जुड़े रहे हैं, इस संस्था से जुड़े। उनकी तजवीज़ हुई कि क्यों न हम अपना स्कूल शुरू करें। इतने पैसे ख़र्च करने के बावजूद बच्चे दोयम दर्जे के स्कूल में क्यों पढ़ें? इस तरह 2019 में पोखरामा फ़ाउंडेशन स्कूल की शुरुआत हुई। पहले स्कूल अजय सिंह जी के घर पर शुरू हुआ। वहीं कई कमरों और बरामदों में कक्षाएँ लगने लगीं। जब बच्चों की तादाद बढ़ी तो नई बिल्डिंग बनाने का सोचा, जो अभी बन ही रही है। इसका ज़िक्र मैंने आगे किया है। अब यह स्कूल नवीं कक्षा तक है और इसमें 113 बच्चे पढ़ते हैं। और नए सत्र से यह संख्या बढ़कर 163 हो गई है।

स्कूल की इमारत।

बच्चों पर असर

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है कि मैंने सातवीं जमात के बच्चों को एक मज़मून पढ़ाया है, तो स्कूल पहुँचने के बाद बातचीत की शुरुआत भी उन्हीं से हुई। अब वे बच्चे आठवीं में आ गए थे और मैंने सामाजिक-सियासी ज़िन्दगी मज़मून उन्हें आठवीं में भी पढ़ाया। जब पूछा कि उन्हें इस स्कूल में पढ़ने पर विचारों में या अपने आप में क्या बदलाव नज़र आते हैं, तो जवाब कुछ इस तरह के थे –

रिया: सवाल तो पहले भी थे। जैसे, मम्मी किसी मज़दूर को सब्ज़ी देने के लिए कहती थीं, तो कहती थीं कि थाली मत देना, रोटी पर ही डाल देना। यह चीज़ें अब समझ में आई हैं कि कैसे समाज में भेदभाव होता है।

रामनिवास: मैम, हम पहले लोगों में भेदभाव करते थे। जैसे, सब मुसलमानों को पाकिस्तानी कहना। अगर खेलते थे तो दूसरी टीम को पाकिस्तान बना देते थे। सभी यह करते थे। अब इन सब चीज़ों पर हँसी आती है।

मनीष: पहले जब मैं दुकान पर बैठता था तो अलग-अलग लोगों से अलग-अलग व्यवहार करता था। मैम, लड़ाई तो सभी लोग करते हैं। अब ग्राहकों से एक-समान बातचीत करने की कोशिश करता हूँ।

इन्हीं बच्चों और इनके अन्य साथियों के साथ जब मैं पोखरामा के दौरे पर गई, तो इनकी पैनी नज़र से उस इलाके को देखने-समझने का लुत्फ़ ही कुछ और था। एक बच्चे ने दिखाया, "ये घर जो आप देख रहे हैं, गाँव के बाहर की तरफ़ इस छोर पर, ये घर तथाकथित (so called) 'नीची जाति' के हैं। मैम, आप तथाकथित 'ऊँची जाति' के घरों से इनकी दूरी देख रही हैं?"

एक बच्चे ने मुझे एक पोखर दिखाते हुए बताया, "मैम, लोगों के हिसाब से यहाँ शिवलिंग निकला था।" इसपर एक अन्य बच्चा मुस्कराया।

ऊपर दिए गए कथन सुनकर मैं यह सोचने पर मजबूर हो गई कि दिल्ली के कई नामी स्कूलों में बच्चों के साथ काम करने का तजुर्बा इतना मुख्तलिफ़ क्यों है। यह ज़रूर है कि पोखरामा में सामाजिक बनावट ही इस तरह की है कि भेदभाव नुमाया-सा है। साथ ही, यहाँ के बच्चे अपने आसपास को बख़ूबी जानते हैं। उन्हें स्कूल और घरों में 'बन्दी' नहीं बना लिया गया है। फिर भी मैं समझती हूँ कि अपने व्यवहार पर ग़ौर करना और इतनी बारीक टिप्पणी करना आसान नहीं है। मुमकिन है कि यह स्कूल के माहौल की देन है। आप इसी माहैल के बारे में आगे पढ़ेंगे।

स्कूल का सामाजिक ताना-बाना

अगर हम बच्चों की बात करें तो

स्कूल के 113 बच्चों में से दो बच्चे मुसलमान परिवार से हैं। तक़रीबन 20-25 बच्चे कहार और दलित जाति से हैं। बाक़ी सभी बच्चे पोखरामा के प्रभुत्व समूहों से हैं। भले ही वे प्रभुत्व वर्ग से हों, लेकिन माली और क्षेत्रीय हिसाब से पिछड़े हुए हैं।

आठवीं कक्षा में फ़िलहाल आठ बच्चे हैं। रिया के पिता पानी-बिजली का काम करते हैं। उजाला के पिता स्कूल के अध्यापकों का खाना पकाते हैं। रामनिवास के पिता खेत-मज़दूर हैं। उनकी अपनी ज़मीन या खेत नहीं हैं। केशव और आदर्श के पिता गाँव के बाहर किसी और क़स्बे में गार्ड का काम करते हैं।

इस बार मुसलमान बच्चों का दाख़िला करवाने के लिए, ताकि स्कूल में विविधता हो पाए, स्कूल प्रशासन, टीचर और बच्चों ने काफ़ी मेहनत की। चूँकि पोखरामा गाँव में मुसलमान आबादी बिलकुल नहीं है, इसलिए पास के उरैन और अली नगर इलाक़ों में लोगों के साथ कई बैठकें कीं, घर-घर गए। पोखरामा फ़ाउण्डेशन के कई बच्चे भी साथ थे। मस्जिद के मौलाना से भी मिले। इस के बावजूद फ़िलहाल दो ही मुसलमान बच्चों का दाख़िला स्कूल में हो पाया। हो सकता है, इन दो बच्चों को देखकर अगले साल अन्य लोग भी अपने बच्चों को इस स्कूल में दाख़िला दिलवाएँ। क्या करें, सामाजिक दूरियों और डर को लाँघना आसान नहीं है।

लेकिन इस मशक़्क़त से एक और फ़ायदा हुआ। जो बच्चे शिक्षकों के साथ इन मोहल्लों में गए थे, उनका कहना था, "मैम, लोगों ने हमारी काफ़ी आवभगत की। हमारे घर में तो इनके बारे में कुछ और ही कहा जाता था।"

पता चला कि एक परिवार किसी दूर गाँव से आकर इस गाँव में इसलिए रहने लगा है ताकि उनके परिवार के बच्चे इस स्कूल में पढ़ सकें। अच्छी शिक्षा के तलबगार बहुत हैं और अच्छे स्कूल कम हैं। ऐसे ही भास्कर, जो कि तांती जाति से हैं, इस गाँव में अपनी नानी के घर पढ़ाई की ख़ातिर रहते हैं। सुबह-सुबह घर से 400 मीटर की दूरी से कम-से-कम छः बाल्टी पानी भरकर लाते हैं। कभी अपना खाना भी खुद ही पकाना पड़ता है। लेकिन स्कूल में खुश हैं। कहते हैं, "क्या पढ़ाई सिर्फ़ पैसा कमाने के लिए है? वो तो कई तरह के काम करके कमाया जा सकता है। गाँव के कल्चर में बदलाव होना चाहिए, जो आसान नहीं है।"

स्कूल के दायरे के बाहर

तीन शिक्षकों ने मिलकर पोखरामा के एक मोहल्ले में, जिसे हरिजन टोला या मुसहरी टोला कहा जाता है, एक नई पहल की है। इस टोले के बारे में बच्चों से पूछने पर यह जवाब मिला, "मैम, यह सब हमारे पूर्वजों का किया-धरा है। पहले ये लोग गाँव में

ही रहते थे, पर इन लोगों को इतना परेशान किया गया कि हाथ-पैर जोड़कर ये गाँव के बाहर जा बसे।" एक अन्य बच्चा हँसता हुआ बोला, "मैम, यहाँ पर लोग कहते हैं कि ऐसा कलयुग आएगा कि शूद्र राज चलाएगा।"

पहल करने वाले अध्यापकों ने इस मोहल्ले के सरकारी स्कूल से शाम में एक कमरा खुलवाने का आग्रह किया, जोकि उन्होंने मान लिया है। अब चार से पाँच बजे तक कमरा मुहैय्या हो जाता है। जब मैं साथ में पहुँची, तो इस अँधेरे-से कमरे में पीछे की तरफ़ एक बल्ब टिमटिमा रहा था। कमरे में रोशनी तो बस बच्चों की ख़ुशी भरी आवाज़ों और खिलखिलाहट की ही थी। इस सेंटर में बच्चों को भाषा और गणित सिखाया जाता है। साथ ही, अलग-अलग उम्र के बच्चे साथ मिलकर कविताएँ भी गाते हैं। और सभी बच्चों की तरह वे भी चाहते हैं कि अँग्रेज़ी कविताएँ भी सीखें। उम्मीद है कि अगले साल मुसहरी और दलित बच्चे ज़्यादा तादाद में स्कूल पहुँचेंगे।

पोखरामा फ़ाउण्डेशन अकैडमी के कई कहार और दलित जातियों के बच्चों से भी बातचीत का मौका मिला। इन लोगों और बच्चों को गाँव के माहौल ने हाशियेबन्दी और अलगाव का शिकार तो कर ही रखा है। पूछने पर कहा, "स्कूल में तो कोई भेदभाव नहीं है, हम सब खूब मस्ती करते हैं।"

इमारत बनने की शुरुआत: मज़दूरों की दावत के लिए लड़के आटा गूँधते हुए। फिर शिक्षकों और बच्चों ने मिलकर खाना पकाया।

आपसी दोस्तियों ने बच्चों को समाज को समझने के नए चश्मे और नज़र दे दी है।

तैयारी सोचने की

कहार और तांतिया जाति के बच्चों के पास अपने तजुर्बों को समझने और शब्दों में पिरोकर अवधारणा से जोड़ने की शब्दावली भी काफ़ी हद तक मौजूद है। सातवीं कक्षा के सौरभ की बातें सुनकर मैं सोचने लगी कि पता नहीं हमने किस तरह का अमूर्त शिक्षा

तंत्र गढ़ा है कि कई बार बड़े कॉलेज के विद्यार्थी भी अपनी ज़िन्दगी से तालीम का जुड़ाव नहीं देख पाते हैं। मेरी सौरभ से जो बातचीत हुई, उसके कुछ अंश यहाँ पेश हैं।

"कॉम्पीटीशन तो जनरल लोग ही निकाल पाएँगे, क्यों? क्योंकि उनके पास मौक़े और संसाधन हैं। वे अच्छी तरह पढ़ाई कर पा रहे हैं, उनपर कोई दबाव नहीं है। वो सोचते भी नहीं होंगे के एस.सी./एस.टी. में क्या हो रहा है...

"अभी हमारे स्कूल के बच्चे पटना गए थे। सरकार इतना टैक्स लेती है, लेकिन नज़रिया नहीं बदल पा रही है। पटना में हर दस कदम पर पचास हज़ार का एक एल.ई.डी. लगा है। इसका क्या फ़ायदा? उसके सामने लोग भीख माँग रहे हैं, भूखे हैं। टैक्स जमा करके सरकार यह नहीं देखती है कि उसका सही इस्तेमाल हो रहा है या नहीं। हम स्कूल से सर्वे करने जाते हैं तो हमें पता चलता है कि सारा फ़ायदा मज़बूत लोगों को ही मिलता है। एस.सी., एस.टी. में भी पैसा कमज़ोर को नहीं मिलता। एक साल से सर्वे कर रहे हैं, सत्रह में से किसी को पाँच योजनाओं का लाभ भी नहीं मिला है...

"अब प्राइवेट का चलन चल रहा है। प्राइवेट जॉब वही करेंगे जिनके पास लैपटॉप है और दस लाख की पढ़ाई... हमारे स्कूल में डिस्क्रिमिनेशन (भेदभाव) नहीं है। लेकिन फिर भी मैं सोचता हूँ कि यहाँ बहुत-से बच्चे ऐसे हैं जो फ़ीस देकर किसी भी बढ़िया-से स्कूल में पढ़ सकते हैं। तो कहार या तांतिया जाति के बच्चों का एडमिशन इस स्कूल में ज़्यादा होना चाहिए।"

आधे घण्टे की बातचीत में सौरभ मियाँ ने ढाँचागत ग़ैर-बराबरी, संसाधनीय ग़ैर-बराबरी, दर्जाबन्दी, हाशियेकरण और निजीकरण की बातें कर डालीं। अपने तजुर्बों को जब बच्चे बेझिझक होकर साथियों के, टीचर के और मेरे सामने रखते हैं तो सभी के लिए मानो एक खिड़की-सी खुल जाती है। मुझे बच्चों की बहस, नाराज़गी, खुशी, खिलखिलाहट और तमाम बातों से लगता है कि स्कूल अपने तालीमी नज़रिए की ओर बढ़ रहा है। इस नज़रिए का पहला तसव्वुर है कि बच्चे स्कूल आने में ख़ुशी महसूस करेंगे और उनके ज़हन में कोई डर नहीं होगा।

स्कूल का माहौल

पोखरामा फ़ाउण्डेशन अकादमी के विज़न दस्तावेज़ के हिसाब से – "स्कूल एक ऐसी जगह होगी जहाँ बच्चे निडरता से रहेंगे। गाँधी जी के हिसाब से अभयदान से बड़ा कोई तोहफ़ा नहीं है।" आगे दस्तावेज़ कहता है कि "खुले माहौल में लगातार बातचीत होगी। रौब और गुस्से को जगह नहीं मिलेगी और न ही कोई बौद्धिक और सांस्कृतिक

दर्जाबन्दी होगी।" शुरू में समुदाय के लोगों को कई ऐतराज़ात थे; जैसे, "टीचर उन लोगों और बच्चों के साथ क्यों बैठे हैं जो सफ़ाई का काम करते हैं?" या फिर, "बच्चे क्यों डेस्क और कुर्सियाँ लगा रहे हैं?" लेकिन अब धीरे-धीरे ऐसे सवाल आना बन्द हो गए हैं।

मेरी क्लास के बच्चे भी गहरे सवाल करते हैं। एक ने पूछा, "अगर आदिवासियों को ज़मीन से हटाया जा रहा है और ज़मीन कम्पनियों को बेची जा रही है, तो उस पैसे से लोगों का फ़ायदा हो सकता है। तब विस्थापन क्यों गलत है?" इन बच्चों से फिर विकास पर सवाल उठाते हुए, सामाजिक और सांस्कृतिक लागत जैसी कई अवधारणाओं पर बातचीत हुई। बहस फिर भी जारी रही।

स्कूल में एक सहज-सा माहौल दिखता है। फैक्ट्री की तरह घण्टी नहीं बजती है। लेकिन बच्चे और टीचर वक़्त पर कक्षा में पहुँच जाते हैं। कई स्कूलों में टीचर की ग़ैर-मौजूदगी में जो हंगामा बरपा होता है, वह देखने को नहीं मिला। कक्षा दो के 16 छोटे बच्चे भी आराम-से अपना काम पूरा करते दिखे। पहले मुझे लगा कि शायद कोई टीचर साथ है। पूछने पर पता चला कि कई टीचर किसी काम से शहर के बाहर गए हुए हैं। लेकिन कुछ लिखने-पढ़ने का काम देकर गए हैं। बच्चे समूहों में और कई अलग से भी शान्ति से अपना काम कर रहे थे।

मुझे लगता है कि स्कूल एक माहौल बनाने में सफ़ल हुआ है। इस पूरे माहौल का असर है कि बच्चे जल्दी ही उसका हिस्सा बन जाते हैं। स्कूल की गतिविधियों में एक लचीलापन देखने को मिलता है। स्कूल के बाद गणित के टीचर स्कूल में 5 से 7 बजे तक मौजूद होते हैं। अगर किसी कक्षा के बच्चे को कोई कठिनाई आती है और वह अलग से समझना चाहती है तो उस समय पूछ सकती है। कई बार किसी अलग विषय के टीचर भी इस दौरान बच्चों से मिलते हैं। यह अध्यापकों की अपनी पहल है, इन्तज़ामिया की कोई राय या तजवीज़ शामिल नहीं है। इसलिए जो टीचर चाहते हैं, वे ही क्लास लगाते हैं।

इस दौरान कई अन्य बच्चे समूहों में इधर-उधर बैठकर काम करते नज़र आते हैं। कोशिश होती है कि ये सब सात बजे तक अपने-अपने घर चले जाएँ। चले भी जाते हैं, लेकिन कुछ बच्चे इम्तहान के समय और ख़ास मौकों पर स्कूल के पुराने कैंपस में देर तक रहते हैं। एक ने कहा, "इम्तहान के समय तो मेरा अपने घर से बस सोने-खाने का रिश्ता रहता है। वरना मैं तो स्कूल में रात दस बजे तक रहता था। यहाँ मुझे काम करने के लिए लैपटॉप भी मिल जाता है।" एक टीचर को इतने लचीलेपन पर ऐतराज़ भी है। उनका कहना है कि

बच्चों को पाबन्दियों में काम करना भी आना चाहिए।

अनुशासन के मायने क्या?

एक दिन देखा कि कक्षा आठ के बच्चों को टीचर बाहर मैदान में मोबाइल पर कोई वीडियो दिखा रही हैं। ठीक से देखने की कोशिश में एक बच्चा चटाई पर करवट से लेटा था। दूसरा उसपर हाथ रखकर आगे की ओर झुका हुआ था। दो बच्चियाँ उनके पीछे बैठीं एक-दूसरे पर हाथ रखे हुए ग़ौर से वीडियो देख रही थीं। कई अन्य बच्चे भी अपनी तरह बैठे थे। अगर बीच में टीचर कुछ कहतीं-पूछतीं तो सब ध्यान-से सुनते और जवाब भी देते थे। इस तरह की चीज़ों पर कई बार अध्यापकों में सही-ग़लत को लेकर बहस छिड़ जाती है जो कि ज़रूरी भी है।

स्कूल जैसे इदारे का तसव्वुर बगैर अनुशासन की बातचीत किए अधूरा-सा है। लेकिन यह सोचने की ज़रूरत है कि अनुशासन का मतलब क्या पाबन्दी और दायरों का खींचना है? अगर दूसरे की आज़ादी का हर्ज हो रहा है, या सीखने-सिखाने में परेशानी है तो अपनी हदों को जाँचना होगा। यानी स्कूल के सन्दर्भ में यह देखना ज़रूरी है कि जिसे हम अनुशासन मान रहे हैं, क्या वह बच्चों को ख़ुदमुख़्तार बनाने में मदद कर रहा है? और क्या वह बच्चों के सीखने में मददगार है या नहीं?

अगर इस पैमाने से हम इस स्कूल को देखते हैं तो अनुशासन की तारीफ़ करनी होगी। चाहे बच्चे ख़ास मुद्रा में न नज़र आएँ (जैसा कि आपने ऊपर दिए गए उदाहरण में देखा) या फिर असेंबली में सेना की टुकड़ी की तरह पंक्तियों में खड़े नज़र न आएँ, लेकिन सीखने-सिखाने का जज़्बा है और कोशिश भी है। वक़्त पर क्लास में पहुँचना, अगर बाहर चटाई पर बैठे हैं तो उसे लपेटकर रखना, कुर्सियाँ लगाना और टीचर से इज़्ज़त से पेश आना – यह सब तो सीख लिया है। यह और बात है कि अगर हम प्रभुत्व वाले समूहों की संस्कृति को तहज़ीब और अनुशासन का हिस्सा मान रहे हैं, तो फिर वह भी कभी-न-कभी परख लेंगे और अगर मुनासिब लगेगा तो अपना भी लेंगे।

अनिल जी से जब इस बारे में बातचीत हुई तो उन्होंने हँसते हुए कहा, "Some amount of irreverence is good." (थोड़ा अनादर/अश्रद्धा भी ज़रूरी है।) शायद यह भी खुलेपन का एहसास देता हो। जबकि मैंने ऐसा कुछ अनादर महसूस तो नहीं किया। स्कूल और तालीम के तसव्वुर या नज़रिए को बनाने और हक़ीक़ी जामा पहनाने में अनिल जी का बड़ा योगदान है। इसके लिए अध्यापकों का चयन और उनसे गहरी गुफ़्तगू, कार्यशाला आयोजन, बच्चों को पढ़ाना - ये तमाम काम अनिल जी अंजाम देते रहे हैं।

प्रोफ़ेसर अनिल सेठी कक्षा दूसरी के बच्चों के साथ।

विविधता का फायदा

एक और बात जो मुझे अजीबो-ग़रीब लगी, वह थी बच्चों की फ़रमाइशें। आठवीं कक्षा के केशव ने मुझसे आग्रह किया कि मैं उन्हें सामाजिक-सियासी ज़िन्दगी के अलावा संविधान भी पढ़ाऊँ। रिया ने आग्रह किया कि कक्षा आठ की किताब के अलावा मैं उसे कक्षा दस की किताब से जेंडर पर एक पाठ पढ़ाऊँ। इस तरह की फ़रमाइशें सिर्फ मुझसे नहीं बल्कि काफ़ी बच्चों की तमाम अध्यापकों से रहती हैं। आजकल कुछ बच्चे एक टीचर के साथ लेनिन पर एक किताब पढ़ रहे हैं। इस पढ़ाई के चस्के को समझना थोड़ा मुश्किल है। एक तो पूरा माहौल, दूसरा, समझकर पढ़ने की ख़ुशी, तीसरा, अध्यापकों से अच्छा रिश्ता, शायद ये सब चस्का जगाने के लिए ज़िम्मेदार हैं।

विज़न दस्तावेज़ के हिसाब से इदारे की विविधता ही एक प्रेरणा का काम करती है। इसमें शामिल हैं खान-पान, पोशाक, संस्कृति, ज़बान, त्यौहार, मज़हब, गीत, नृत्य और विज्ञान व गणित के दृष्टिकोण भी। बच्चों में विविधता का ज़िक्र तो मैंने किया। अध्यापकों में भी काफ़ी विविधता देखने को मिलती है। दस-ग्यारह टीचर देश के अलग-अलग प्रान्तों और राज्यों से हैं, जैसे - केरल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, असम, कर्नाटक, गढ़वाल, हैदराबाद, पंजाब और दिल्ली के अलग-अलग क़स्बों, गाँवों और शहरों से।

एक सज्जन के संघर्ष भरे सफ़र ने उन्हें ज़्यादा हमदर्द इन्सान बना दिया है। गाँव के स्कूल, कॉलेज में एक मददगार उस्ताद मिलीं तो कॉलेज तक पढ़ाई की, बीच में गार्ड की नौकरी भी की। आगे एक जानी-मानी यूनिवर्सिटी में पढ़ने का मौका मिला।

इन टीचर के संघर्ष ने उन्हें हाशियों से जूझते बच्चों की मदद करने का गहरा जज़्बा दिया है। ये टीचर हरिजन टोले में लर्निंग सेंटर शुरू करने वालों में से एक हैं।

यह आपसी भिन्नता बहुत-से मिथ्य टूटने का ज़रिया भी बनती है। एक-दूसरे से समझने-सीखने के बहुत-से मौक़े भी होते हैं। अध्यापकों ने तालीम भी अलग-अलग इदारों से मुकम्मल की है। टीचर हज़रात को मेहनत से काम करते देखकर पूछा कि उन्हें पोखरामा स्कूल में कैसा लग रहा है। एक ने जवाब दिया, "यहाँ ऑटोनॉमी (आज़ादी) है। अपनी तरह पढ़ा सकते हैं।" अन्य ने जवाब दिया, "हम सब एक-दूसरे की, चाहे वे प्रशासन के लोग हों या फिर टीचर, इज़्ज़त बहुत करते हैं। लगता है कि जैसे बहुत दिनों से जानते हैं। एक भावना है फ़ाउण्डेशन की।"

खुला माहौल सबके लिए

अध्यापकों का खाना एक जगह बनता है, और सब साथ में नाश्ता-खाना खाते हैं। साथ ही, हँसी-मज़ाक़ चलता है। बच्चों के बारे में बातचीत होती है – आजकल कौन ज़्यादा सवाल पूछ रहा है, किसकी तबियत ख़राब है, किस बच्चे ने क्या सीखा है, किसने क्या शरारत की वग़ैरह। अगले दिन की सामूहिक गतिविधियों की योजना भी साथ मिलकर बना ली जाती है।

अध्यापकों के व्यावसायिक विकास के बारे में स्कूल ने जो दस्तावेज़ तैयार किया है, वह कहता है – 'अध्यापकों को भी विद्यार्थियों की तरह आज़ादी, लचीलेपन और इज़्ज़त की ज़रूरत होती है। पोखरामा फ़ाउण्डेशन एक ऐसा माहौल बनाना चाहता है जहाँ हरेक ख़ुद अपना शासक हो या फिर स्व-राज करे। जहाँ टीचर और बच्चों को अपने काम से इतना लगाव हो कि वे जोश-ओ-ख़रोश से नई ऊँचाइयों को पा सकें'।

अध्यापकों ने अपनी मर्ज़ी से और साथियों से चर्चा करके नए क़दम उठाए हैं। जैसे कई लोग स्कूल के बाद बच्चों के लिए मौजूद रहते हैं और कुछ ने यह ज़िम्मेदारी लेना मुनासिब नहीं समझा। पढ़ाने से लेकर क्लब और हाउस सिस्टम की ज़िम्मेदारियाँ टीचर आपस में मिलकर ही तय करते हैं और नतीजों के हिसाब से बदलते भी हैं। मैनेजमेंट या इन्तज़ामिया ने तयशुदा गतिविधियाँ थमाई नहीं हैं।

स्कूल की दुमंज़िला इमारत अभी बन ही रही है। जो कक्षाएँ तैयार हो गई हैं, उनमें बच्चे बैठते-पढ़ते हैं। चन्द कक्षाएँ स्कूल शुरू करवाने वाले अजय जी के घर के बरामदों और कमरों में चलती हैं। जब छोटे बच्चों की छुट्टी हो जाती है, तब बड़े बच्चे आधी छुट्टी के बाद अपने घरों से खाना खाते हुए नए कैंपस पहुँच जाते

हैं। पुराने कैंपस (या घर) से नया कैंपस तकरीबन सवा किलोमीटर दूर है। कुछ बच्चे साइकिल से, कुछ पैदल और कुछ टोटो रिक्शा से पहुँचते हैं। इमारत काफ़ी ख़ूबसूरत बन रही है। एक ख़ास चीज़ पर मेरा ध्यान दिलाया गया कि इमारत और हरियाली अलग-अलग से महसूस नहीं होते। बिल्डिंग के बीच में बड़ी क्यारियाँ लगाई गई हैं। छोटे बच्चों की हर कक्षा के बाहर एक छोटा बग़ीचा है। काफ़ी पेड़ लगाने और बांस का झोपड़ बनाने का इरादा है। स्कूल परिसर में एक पोखर है जो स्कूल की इमारत पूरी बनने के बाद खूबसूरती में इज़ाफ़ा करेगा।

कुछ गतिविधियाँ

स्कूल की गतिविधियों का आपस में एक जुड़ाव-सा मालूम पड़ता है। स्कूल में चार हाउस हैं - Liberty, Equality, Fraternity, Dignity. हाउस सिस्टम के अलावा स्कूल में दस क्लब भी हैं। इनके नाम इनका अच्छा तार्रुफ़ हैं। कुछ हैं – यंग जर्नलिस्ट क्लब, पोखरामा प्लस, यंग साइंटिस्ट, फ़न विद मैथ, गाँधी स्टडी सर्कल, वॉइस-आवाज़ वॉइस-आबाद, थिएटर, गेम्स क्लब, साइकिल सदा, पॉवर हाउस (योग/aerobic exercise)।

इनमें से कुछ सिर्फ़ बड़े बच्चों के लिए हैं और कुछ सिर्फ़ छोटे। 'पोखरामा क्लब' जो चलाती हैं, उन उस्तानी से बातचीत हुई। उन्होंने क्लब की कुछ (दो साला) गतिविधियों के बारे में बताया। सबसे पहले उन्होंने पोखरामा की हाल की तारीख़ में जो ख़ास घटनाएँ घटी हैं, उनका एक घटनाक्रम बनाने की कोशिश की। जैसे बाढ़ का आना, अस्पताल का

Fraternity *हाउस की पहली हाउस मीटिंग।*

प्री-प्रायमरी कक्षाओं की शनिवार क्लब गतिविधि।

बनना। इसी में आगे खेती के सफ़र और बदलाव को समझने की कोशिश हुई; जैसे, पहले ट्रैक्टर का गाँव में आना या फिर महिलाओं के अहम योगदान को जानना-समझना। आगे चलकर क्लब के बच्चों ने घर-घर जाकर सर्वे भी किया। इसमें उन्होंने हर घर में सुविधाओं, टॉयलेट, प्रवास, शिक्षा की स्थिति, लड़कियों के स्कूल छोड़ देने और अन्य किस्म की दिक़्क़तों के बारे में पता किया। यह भी कोशिश की कि लोगों को कई तरह की जानकारी फ़राहम हो सके। हाल ही में ये बच्चे नुक्कड़-नाटक तैयार कर रहे थे जिसे वे गाँव के लोगों के सामने प्रस्तुत करेंगे। अब आप सोच ही सकते हैं, ये गतिविधियाँ पाठ्यक्रम का हिस्सा ही हैं। सामाजिक-सियासी ज़िन्दगी जैसा मज़मून, जोकि आठवीं के बच्चों को मैं पढ़ाती हूँ, इन गतिविधियों से और समृद्ध होता है। बच्चे बहुत-से उदाहरण भी दे पाते हैं।

इसी तरह 'साइकिल सदा' से जुड़े बच्चे-बच्चियाँ अपनी सवारी पर अपने और पड़ोस के गाँव तक जाते हैं। ख़ास तौर पर इस क्लब से जुड़ी लड़कियों को खुलेपन का अनुभव हुआ है। शुरू में अगर कई माँ-बाप ने ऐतराज़ भी किया तो अब वे धीरे-धीरे इसके आदी हो गए हैं।

ये जो गतिविधियाँ होती हैं, उन्हें दर्ज करने का और बच्चों के लेख छापने का भी काम शुरू हुआ है। *पोखरामा हेराल्ड* नामक एक मैगज़ीन की शुरुआत की है, जिसका अभी एक ही अंक निकल पाया है।

कोरोना महामारी के दौरान स्कूल ने अच्छा काम किया। काफ़ी दिन कक्षाएँ ऑनलाइन चलीं, लेकिन सभी बच्चों की सुविधा का ख़याल रखा गया। जिन बच्चों के पास फ़ोन नहीं

थे, उन्हें फ़ोन भी खरीदकर दिए गए। काफ़ी बच्चे, लगभग तीस फ़ीसदी, अब भी पूरे वज़ीफे पर हैं, यानी उन्हें फ़ीस नहीं देनी पड़ती। और तीस फ़ीसदी आधी फ़ीस देते हैं। कुछ जो माली ऐतबार से बेहतर हैं, वे पूरी फ़ीस दे पाते हैं। ये फ़ीस भी ज़िले के निजी स्कूल से कम है। स्कूल इन्तज़ामिया की कोशिश है कि ये सिलसिला बरक़रार रहे ताकि स्कूल में विविधता बनी रहे। एक कोष बनाने का जतन जारी है ताकि यह सिलसिला क़ायम रह सके।

...और कुछ सवाल

अभी तो स्कूल में काफ़ी जोश-ओ-खरोश दिखता है। सब मिलकर इदारा बनाने में लगे हैं। सवाल यह है कि जब बच्चों की तादाद बढ़ेगी, तब क्या इसी तरह से काम जारी रहेगा? स्कूल की इसके लिए कितनी तैयारी है? स्कूल को इसके अलावा कई चीज़ों के बारे में गहराई से सोचने की ज़रूरत है। अपने विज़न दस्तावेज़ में यह गाँधी के दृष्टिकोण की बात तो करते हैं लेकिन कई गहरे मुद्दों से जूझने की ज़रूरत है। एक बच्चे के घर पहुँचे तो बड़े भाई ने शिकायत की, "मैम, इसमें बहुत कमियाँ हैं। गोबर उठाने के लिए कहो तो कहता है कि मेरे हाथों से बास आती है। अब बताइए, जब घर में पशु हैं और खेती-बाड़ी है, तो यह सब काम आना भी तो ज़रूरी हैं।" यह सोचना होगा कि स्कूल का जो सन्दर्भ है, उसमें किन चीज़ों का खण्डन होना ज़रूरी है और किन बातों को इज़्ज़त देना और रोज़मर्रा में शामिल करना ज़रूरी है। क्या हम स्कूल और घर के बीच में बेहतर रिश्ते और तालमेल की कोशिश कर सकते हैं?

'नई किताबें सप्ताह' समारोह।

फ़राह फ़ारूक़ी: इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़ इन एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली में पढ़ाती हैं।

सभी फोटो: निर्पेन्द्र कुमार।

जंगल का दाह

स्वयं प्रकाश

मामा सोन अपने समय के प्रख्यात धनुर्धर थे। वे जंगल में रहते थे, लंगोटी पहनते थे और वनवासियों के बच्चों को तीर-कमान चलाना सिखाते थे। अपना धनुष और अपने बाण भी वे स्वयं बनाते थे। वनवासी खेती करना नहीं जानते थे। जंगल की ज़मीन भी ऐसी न थी कि जिस पर आसानी-से खेती की जा सके। उनकी आजीविका पशुपालन, वनोपज और शिकार से ही चलती थी। यह ज़रूरी था कि वनवासी, चाहे लड़का हो या लड़की, अपनी रक्षा और आजीविका के लिए तीर-कमान चलाना ज़रूर सीखें। मामा सोन को बच्चे घेरे रहते थे। वनवासी मामा सोन की बहुत इज़्ज़त करते थे और बच्चों की शिक्षा के लिए उनके पास भेजते समय बहुत-सा अनाज और सूखा मांस, पशुओं की खाल, बाँस से बनी घरेलू वस्तुएँ और जंगली कन्दमूल वगैरह ले आते थे।

मामा सोन बच्चों के लिए उनकी कद-काठी और ज़रूरत के अनुसार तीर-कमान बनाते और सबसे पहले उन्हें पक्षियों के नाम, आदतें, उनके आने के मौसम, बैठने के ठिकाने, उनकी प्रजाति की बढ़त-घटत का हिसाब और उनके खाद्य-अखाद्य होने की जानकारी, यह सब अपने शिष्यों को बताते। खुद आगे-आगे चलते और थोड़े ही दिनों में अपने शिष्यों को जंगल के चप्पे-चप्पे से परिचित करा देते। कुछ ही वर्षों में उनके शिष्य इतने कुशल हो जाते कि एक-एक तीर से चार-चार चिड़ियाँ गिरा देते। मामा सोन अपने शिष्यों को तीर-कमान बनाना भी सिखाते थे। किस शिकार के लिए कैसे तीर की ज़रूरत होगी, किस तरह का फाल चमड़ी को कितनी गहराई तक भेदेगा, कैसी प्रत्यंचा तीर को कितनी दूर तक फेंकेगी आदि। सुना है, मामा सोन को ऐसे तीर बनाना भी आता था जो लक्ष्य भेदकर वापस कमान में आ जाते थे; देखा तो किसी ने नहीं, लेकिन इस पर अविश्वास करने का भी कोई कारण नहीं था। धीरे-धीरे मामा सोन की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई।

* * *

एक दिन एक राजकुमार अपने नौकर-चाकर व सैनिकों के साथ जंगल में शिकार खेलने आया। राजकुमार को न शिकार का कोई अनुभव था, न उसमें पशु-पक्षियों के साम्राज्य में प्रवेश करने की विनम्रता थी। नतीजा यह हुआ कि राजकुमार

और उसके साथी हो-हल्ला करते हुए और ललकारते हुए जंगल में घुसे। चिड़ियों ने इन अजनबियों की अजीबोगरीब हरकतों को सन्देह के साथ देखा और इधर से उधर तक उड़कर और शोर मचाकर सारे जंगल को सावधान कर दिया। अचानक आए खतरे की सूचना पाकर सारे पशु-पक्षी अपनी-अपनी कोटरों, खोहों, सबलों, घोंसलों, गुफाओं में दुबक गए। राजकुमार और साथ के शिकारी शिकार की तलाश में खाली हाथ भटकते रहे। लेकिन शेर किसी से क्यों डरे? तू राजा है तो हम भी राजा हैं। तू राजा का बेटा है तो हम भी हैं। तो शेर पहुँच गया राजकुमार के सामने और सहज अभिवादन के भाव से दहाड़ा। खुले शेर को देखकर और उसकी दहाड़ सुनकर राजकुमार के सारे साथी भाग गए और राजकुमार चीखने-चिल्लाने लगा। राजकुमार की चीख-चिल्लाहट को आक्रमण की ललकार समझकर शेर ने राजकुमार पर हमला कर दिया। ठीक इसी समय झाड़ी के पीछे छिपे मामा सोन के एक शिष्य ने शेर पर तीर चलाकर

उसका ध्यान बटाया और राजकुमार को सम्भलने का मौका दिया। वह शेर को भगाता-भगाता राजकुमार से बहुत दूर ले गया। इस तरह उस दिन राजकुमार की जान बच गई।

मामा सोन के शिष्यों ने राजकुमार की सेवा-सुश्रूषा की और उसे सकुशल उसके राज्य में छोड़ आए। राजकुमार ने घर जाकर सारी विगत राजा को बताई। राजा बहुत खुश हुआ परन्तु उसे बहुत दुख भी हुआ। खुश इसलिए हुआ कि उसके बेटे की जान बच गई और दुखी इसलिए कि बेटा इतना बड़ा ढोर हो गया लेकिन अपनी खुद की भी रक्षा नहीं कर सकता तो राज्य की और राज्यवासियों की रक्षा कैसे कर पाएगा! उस दिन राजा ने राजकुमार को खूब लताड़ा। राजा की लताड़ सुनकर राजकुमार सोच में पड़ गया और आखिर उसने ठान लिया कि अब वह भी धनुर्विद्या सीखेगा और मामा सोन से ही सीखेगा।

राजा ने मामा सोन को अपने दरबार में बुला भेजा। मामा सोन ने पहले तो संकोच किया, फिर इस शर्त पर राजकुमार को धनुर्विद्या सिखाने पर राज़ी हो गए कि इसके लिए राजकुमार को जंगल में ही रहना होगा। राजा को भला इस पर क्या आपत्ति होती? मामा सोन ने विद्यारम्भ की तिथि निर्धारित की और जंगल लौट आए।

* * *

कुछ दिनों बाद राजधानी से बेलदार, मिस्त्री, लोहार, सुतार, संगतराश, कारीगरों व मजदूरों का एक बड़ा दल जंगल में आता दिखाई दिया।

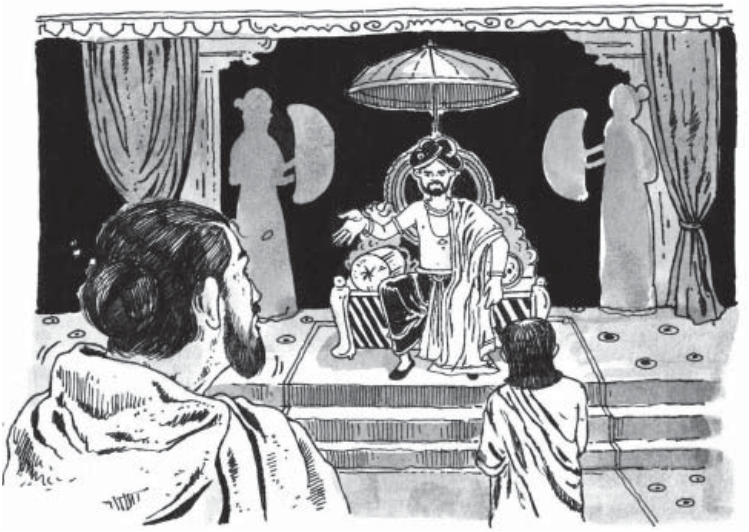

पता चला, जंगल के बीच दो सर्वसुविधा सम्पन्न महल बनाए जाएँगे जिनमें रहकर राजकुमार धनुर्विद्या सीखेंगे। लेकिन दो महल क्यों? पता चला कि एक राजकुमार के लिए और दूसरा आचार्य शोण के लिए। यह आचार्य शोण कौन हैं? मामा सोन ही अब आचार्य शोण हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, मामा सोन के लिए उपहारों की बैलगाड़ियाँ भी आने लगीं। इनमें जूते, धोती, मुकुट, शिरस्त्राण, मणिमालाएँ, आसन, आसन्दी, पलंग और न जाने क्या-क्या अल्लम-गल्लम चीज़ें थीं। सच बात है! लंगोटी लगाने वाले मामा सोन राजकुमार के गुरु कैसे हो सकते हैं? इन अभूतपूर्व गतिविधियों से जंगल की शान्ति भंग होने लगी, पेड़ कटने लगे, पानी-हवा दूषित होने लगे, पशु-पक्षी डरने-छिपने लगे; उग्र और हिंसक होने लगे। राजा के आदमियों के उत्पात से वनवासी भी परेशान हो गए और अपना घर छोड़-छोड़कर भागने लगे।

कोढ़ में खाज यह कि राजा ने आज्ञा निकालकर उस क्षेत्र में शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया ताकि सारे पशु-पक्षियों को वनवासी ही न मार लें, कुछ राजकुमार के लिए भी बचे रहें। कहा यह गया कि वन्य जन्तुओं का संरक्षण आवश्यक है। राजा ने यह भी आज्ञा प्रसारित कर दी कि अब से आचार्य शोण केवल राजकुमारों को धनुर्विद्या सिखाएँगे। पड़ोसी राज्यों को सूचना भिजवा दी गई कि अगली वसन्त ऋतु से हमारे यहाँ धनुर्विद्या प्रशिक्षण की व्यवस्था आरम्भ हो रही है। यदि आप चाहें तो इतना कर व इतना दान हमारे राजकोष में जमा करवाकर अपने राजकुमारों को इतनी अवधि के लिए आचार्य शोण के आश्रम में भेज सकते हैं। अब मामा सोन की कुटिया में अशर्फियों के टोकरे तो भरे हुए थे लेकिन अब कोई उन्हें अनाज, सूखा मांस, पशुओं की खाल, बाँस की बनी वस्तुएँ और जंगली कन्दमूल लाकर नहीं देता था। इन चीज़ों की व्यवस्था मामा सोन को स्वयं करनी पड़ती थी। वह कसमसा तो बहुत रहे थे लेकिन कुछ कर नहीं पा रहे थे। कुटिया के बाहर सैनिकों का पहरा था। वह जहाँ कहीं भी जाते, गुप्तचर उन पर नज़र रखते थे। हारकर उन्होंने खुद को नियति के हवाले कर दिया।

* * *

एक दिन राजकुमार ने मामा सोन से पूछा, "सम्पूर्ण धनुर्विद्या सीखने में मुझे कितना समय लगेगा?"

मामा सोन ने कहा, "सम्पूर्ण का तो मुझे नहीं मालूम, लेकिन सीखने के लिए तो पूरी उम्र भी कम है। सीखना तो जीवन भर ही चलता रहता है।"

राजकुमार ने पूछा, "आपको जितना आता है उतना सब मुझे कितने दिन में सिखा देंगे?"

मामा सोन ने कहा, "यह तो सीखने वाले की लगन पर निर्भर

करता है। पर फिर भी पूनम के छह चाँद तो मान ही लो।"

राजकुमार ने पूछा, "क्या अवधि कुछ कम नहीं हो सकती?"

मामा सोन ने कहा, "खूब मन लगाकर सीखोगे तो हो सकता है पाँच चाँद में ही सीख जाओ। पर उसके बाद भी अभ्यास जारी रखना होगा। सब कुछ अभ्यास पर ही निर्भर करता है।"

राजकुमार ने कुछ सोचने के बाद कहा, "मैं तुम्हें इस काम के लिए एक महीने से ज़्यादा समय नहीं दे सकता। एक महीने में जितना जानते हो फटाफट मुझे सिखा देना, वरना मैं दूसरा गुरु ढूँढ़ लूँगा।"

राजकुमार इतना कहकर अपने निर्माणाधीन भवन की ओर जाने लगा।

मामा सोन ने उसे पुकारकर रोका और पास जाकर कहा, "इससे पहले की विद्यारम्भ का दिन आए, मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे साथ घूमकर पूरा जंगल अच्छी तरह देख लो।"

"जंगल के बारे में गुप्तचरों ने मुझे सब कुछ बता रखा है।"

"फिर भी, अपनी आँखों से देखने की तो बात ही कुछ और होती है।"

"देखना क्या है? जंगल में होता क्या है? पेड़, जैसे यहाँ हैं वैसे ही वहाँ भी होंगे।"

"शिकारी को जंगल के चप्पे-चप्पे से परिचित होना चाहिए। कहाँ दलदल है, कहाँ सूखी ज़मीन, कहाँ गहरा पानी है, कहाँ जानवरों का पानी पीने का स्थान, कहाँ मधुमक्खियों के छत्ते हैं, कहाँ चींटियों की बाम्बियाँ, कहाँ पेड़ों पर पक्षियों ने घोंसले बनाए हैं, कहाँ सियार व लोमड़ी ने मान्द में बच्चे जने हैं। किस मौसम में कौन से पक्षी आते हैं और कब, किसका, कहाँ शिकार करना चाहिए। अपनी झोंक में शिकार के पीछे भागते हुए यदि तुमसे किसी निर्दोष मासूम का घरौन्दा दब गया, घोंसला टूट गया, छत्ता बिखर गया या सबल धँस गया तो तुम मुसीबत में आ जाओगे। एक छोटी-सी जंगली मक्खी भी तुम्हारी जान ले सकती है।"

मामा सोन की बात सुनकर राजकुमार ने लापरवाही से कहा, "मुझे कौन-सा हमेशा जंगल में रहना है? मैं तो अपनी राजधानी में रहूँगा, जहाँ सुख ही सुख हैं। केवल कभी-कभी जब सुखों से ऊब जाऊँगा, अपने साथियों के साथ यहाँ आ जाया करूँगा, आखेट क्रीड़ा के लिए।"

मामा सोन को आश्चर्य हुआ। उन्होंने तुरन्त पूछा, "आखेट को तुम्हारी भाषा में क्रीड़ा कहते हैं? हमारी तो यह आजीविका है। हम तो अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आखेट करते हैं। वह भी हमें एक ही दिन नहीं करना होता है, इसलिए इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि किसको मारना है, किसको नहीं

मारना है। हमारे आखेट से पशुओं की संख्या कम नहीं होती..."

मामा सोन की बात काटकर राजकुमार बोला, "आजीविका थी, अब नहीं रहेगी। आखेट पर प्रतिबन्ध लगाया जा चुका है। अब तो मैं ही मारूँगा जितने भी मारूँगा और जब सिर्फ मुझे ही मारने हैं तो कितने भी मारूँ, क्या फर्क पड़ता है?"

राजकुमार की बात सुनकर मामा सोन को धक्का लगा। वे दुखी मन से लौट गए। अगली सुबह राजकुमार के नवनिर्मित महल में गए और बोले, "कल से तुम्हारी शिक्षा शुरू हो जाएगी। कल ब्रह्म मुहूर्त में उठना और तैयार होकर मेरे पास आना। हम व्यायाम करेंगे, वनदेवी की पूजा करेंगे और अपने तीर-कमान लेकर प्रशिक्षण स्थल चलेंगे। रोज़ यही करना होगा।"

"व्यायाम क्यों? मुझे धनुर्विद्या सीखनी है, मल्लविद्या नहीं। और जल्दी उठने की तो मुझे आदत ही नहीं है। फिर भी, कोशिश करूँगा।" राजकुमार ने अरुचिपूर्वक कहा। मामा सोन जाने लगे तो राजकुमार मन ही मन बड़बड़ाया, "कल को कहेंगे लंगोटी लगाकर घूमना पड़ेगा। लगता है पूरा जंगली बनाकर छोड़ेंगे।"

* * *

आखिर विद्यारम्भ का दिन आया। वनदेवी को प्रणाम करके मामा सोन और राजकुमार ने अपने-अपने धनुष-बाण उठाए और जंगल के भीतर एक अपेक्षाकृत खुले स्थान पर आ गए। मामा सोन ने कहा, "तो चलो, चिड़ियों से ही शुरू करते हैं। सामने पेड़ पर ढेर सारी चिड़ियाँ बैठी हैं। इनमें से वह नीली वाली चिड़िया देखते हो? वह अपनी तीखी-लम्बी चोंच से दूसरी चिड़ियों के अण्डे फोड़ देती है। उसे मार गिराओ।"

राजकुमार ने तीर चलाया। एक भी चिड़िया न गिरी, न उड़ी। उसने मायूसी से मामा सोन को देखा।

मामा सोन ने कहा, "कोई बात नहीं। पेड़ पर सैकड़ों चिड़ियाँ हैं। किसी एक को निशाना बनाकर तीर चलाओ।"

राजकुमार ने तीर चलाया। तीर एक डाली से जा लगा। सारी चिड़ियाँ उड़ गईं।

"लेकिन ये तो हिलती हैं," राजकुमार ने परेशान होकर कहा।

"कोई बात नहीं, आज घूमते हैं," मामा सोन ने कहा।

दूसरे दिन मामा सोन राजकुमार को फिर उसी जगह ले गए। आज भी उस पेड़ पर ढेरों चिड़ियाँ बैठी थीं, लेकिन एक भी चिड़िया हिलडुल नहीं रही थी।

मामा सोन ने राजकुमार से कहा, "इनमें से किसी भी एक को गिरा दो।"

राजकुमार ने एक-एक करके सात तीर चलाए, लेकिन एक भी चिड़िया नहीं गिरी। मामा सोन ने ठीक से तीर

पकड़ना, प्रत्यंचा ठीक से खींचना, निशाना ठीक से लगाना आदि सिखाया, पर सब बेकार। फिर मामा सोन ने स्वयं निशाना लगाया। एक साथ दस चिड़ियाँ गिर गईं। राजकुमार ने पास जाकर देखा। सब नकली थीं। वह मायूस हो गया।

"चिड़ियाँ बहुत छोटी-छोटी हैं।" राजकुमार बोला।

"कोई बात नहीं, देखा जाएगा। आओ आज इस तरफ घूमते हैं।"

वह दिन भी तीर-कमान उठाए-उठाए घूमने में ही निकल गया। अगली सुबह फिर दोनों उसी स्थान पर पहुँचे। राजकुमार ने देखा कि पेड़ पर एक मोटे-ताज़े मुर्गे जितनी बड़ी नकली चिड़िया लटक रही है। मामा सोन ने कहा, "इस पर दस तीर चलाओ। दस में से एक-न-एक तीर तो इसे गिरा ही देगा।" राजकुमार ने दस तीर निशाना साधकर लगाए, लेकिन मोटी चिड़िया जहाँ की तहाँ थी।

"यह बहुत ऊपर है," राजकुमार ने कहा। "इतना ऊपर निशाना साधने की कोशिश में मेरा हाथ काँप जाता है।"

"कोई बात नहीं। इसका भी कुछ उपाय करेंगे। चलो, घूमने चलते हैं। आज उस तरफ।"

राजकुमार ऊबने लगा। अगले दिन मामा सोन ने एक पटिए पर एक बड़ी-सी चिड़िया बनाकर ज़मीन पर रख दी और राजकुमार को कहा, "सौ

कदम दूर से चिड़िया की आँख पर निशाना साधकर दस तीर चलाओ।"

राजकुमार ने दस तीर चलाए जिनमें से तीन ही चिड़िया को लगे। आँख पर तो एक भी नहीं लगा। राजकुमार गुस्से से पाँव पटकने लगा। उसने धनुष भी तोड़ दिया। मामा सोन ने उसे समझाया-बुझाया और कहा, "चिड़िया का शिकार करने चले हो तो चिड़िया तो छोटी ही होगी, वह बैठेगी भी पेड़ पर ही और हिलेगी क्या, उड़ेगी भी! क्या तुम यह सोचते हो कि चिड़िया को उड़ना नहीं चाहिए? क्या तुम यह चाहते हो कि तुम्हारा शिकार परम आज्ञा-कारितापूर्वक तुम्हारे सामने मरने के लिए स्थिर बैठा रहे?"

राजकुमार को कुछ समझ में नहीं आया। उसने घूमने जाने से भी मना कर दिया और अपने नए महल में जाकर सो गया।

अगली सुबह जब राजकुमार मामा सोन के साथ धनुर्विद्या सीखने के स्थान पर पहुँचा तो उसने देखा कि कुछ सौ कदम दूर ज़मीन पर एक बड़ा-सा खाली तख्ता खड़ा है। उसे समझ में नहीं आया कि यह क्या माजरा है।

मामा सोन ने राजकुमार से कहा, "यहाँ खड़े होकर इस तख्ते पर दस तीर चलाओ।"

राजकुमार ने ऐसा ही किया। दस में से नौ तीर तख्ते पर लगे और एक छिटक गया। तब मामा सोन ने ज़मीन पर से एक कोयले का टुकड़ा उठाया और तख्ते पर जहाँ-जहाँ राजकुमार का तीर लगा था, वहाँ-वहाँ एक चिड़िया बना दी।

वे बोले, "तुम्हारे लिए फिलहाल यही ठीक रहेगा। अब तुम कह सकते हो कि आज तुमने दस में से नौ चिड़ियाँ मार गिराईं। कुछ दिन इसी

का अभ्यास करना। आओ, अब घूमने चलते हैं। आज मैं तुम्हें हुदहुद दिखाऊँगा। वह आई हुई है।"

दो दिनों बाद राजा का भेजा मंत्री यह जानने आया कि राजकुमार का प्रशिक्षण कैसा चल रहा है। उसे बता दिया गया कि बहुत अच्छा चल रहा है। एक महीने भर की समाप्ति पर भी राजकुमार को बस इतनी ही धनुर्विद्या आ पाई कि वह तख्ते पर तीर चलाए और दस में से नौ चिड़ियाँ मार गिराए।

* * *

एक महीना पूरा होने पर राजा हाथी, घोड़ों, मंत्री, कारिन्दों और एक सैनिक टुकड़ी के साथ स्वयं बेटे का धनुर्विद्या प्रशिक्षण देखने आया। राजा की सवारी के जुलूस के जंगल में आने की खबर नन्हीं चिड़ियाओं ने दूर-दूर तक फैला दी। राजा देखते ही समझ गया कि मामा सोन ने राजकुमार की शर्तों पर उसे धनुर्विद्या सिखाने से एक तरह से साफ मना कर दिया है। राजा को गुस्सा तो अपने बेटे की नालायकी पर आ रहा था, लेकिन जो भी हो, वह उसका बेटा ही नहीं, राजगद्दी का उत्तराधिकारी और भावी राजा भी था। इसलिए उसे कुछ कहने की बजाए राजा ने मामा सोन की मुश्कें कसवा दीं और बेटे से कहा, "आज तेरा गुरु ही तेरा तख्ता है। इसी पर तीर चला। क्योंकि मैं चाहता हूँ कि यदि तू नहीं सीख पाया तो दूसरा कोई भी मामा सोन की धनुर्विद्या न सीख पाए।"

मामा सोन जानते थे कि एक-न-एक दिन यह होगा और वे मन ही मन इसके लिए तैयार भी थे। राजकुमार धनुर्विद्या में एकदम कोरा सही लेकिन तख्ते पर 'दस में से नौ' चिड़ियाँ तो मार ही लेता था। फिर यहाँ तो एक जीता-जागता मनुष्य था। मनुष्य से बड़ा कौन-सा लक्ष्य हो सकता है! खासकर जब उसकी मुश्कें बन्धी हों, और पीठ तख्ते से सटी हो, चारों तरफ सहस्त्र सैनिकों का पहरा हो और सरपरस्ती के लिए पीठ पर राजा का हाथ भी हो। राजकुमार ने कमान पर तीर चढ़ाया और साँस रोककर निशाना साधा। लेकिन इससे पहले कि तीर राजकुमार की कमान से निकलता, चारों तरफ के घने पेड़ों के पीछे से सैकड़ों तीरों की वर्षा शुरू हो गई। राजा के सैनिकों में भगदड़ मच गई और वे छिपने की, और मोर्चा लेने की जगह ढूँढ़ने लगे। कुछ ही देर बाद चारों तरफ से भालू, बन्दर, सियार, बाघ, बघेरे, साँप, बिच्छू, ततैया, मधुमक्खी, चील, बाज, हिरण, बारहसिंघा, लकड़बग्घा, ऊदबिलाव, गेण्डे, भैंसे, जिराफ, हाथी निकल आए और भयानक गर्जनाएँ करते हुए राजा के सैनिकों को उठा-उठाकर इधर से उधर फेंकने लगे। जंगल के इस अचानक और अप्रत्याशित आक्रमण से राजा की प्रशिक्षित सैन्य टुकड़ी के भी पैर उखड़ने लगे।

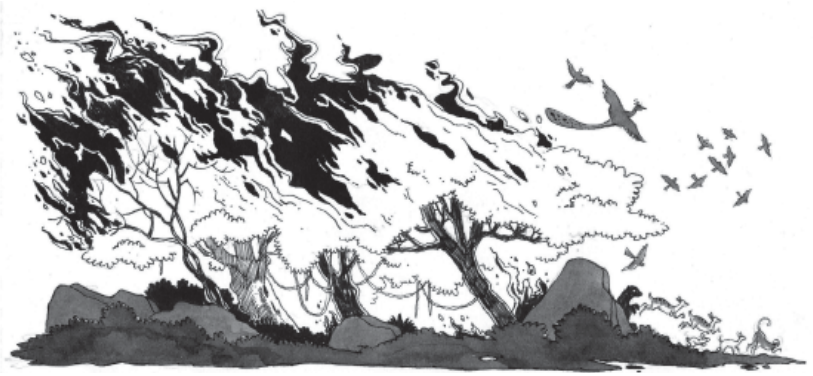

"बचाओ-बचाओ" की चीखों के बीच सैनिक उल्टे पैर भागने लगे। कुछ वफादार सैनिकों ने राजा और राजकुमार को एक घेरे में ले रखा था। जब उन्होंने देखा कि इस हमले का मुकाबला नहीं कर पाएँगे तो वे भी घायल राजा और राजकुमार को लेकर भाग गए। लेकिन कमीने जाते-जाते जंगल में आग लगा गए। वन के पशु-पक्षी और वनवासी राजा की फौज से तो टक्कर ले सकते थे, लेकिन अग्नि देवता के आगे उनका कोई बस नहीं चल पाता था। अफसोस कि न मामा सोन को बचाया जा सका, न उनकी धनुर्विद्या को। अगर वहाँ कुछ बचा तो वह बस राख ही राख थी। राजकुमार का महल भी जलकर राख हो गया था। राजा और उसके वफादार सैनिक भी।

* * *

कहने वालों ने कहा कि बरसात के बाद वहाँ वन्य वनस्पति और ज़्यादा लहलहाकर फूटेगी। कहने वालों ने यह भी कहा कि वनवासियों के बीच से ही एक दिन फिर कोई मामा सोन जन्म लेगा। ऐसा हुआ या नहीं, पता नहीं। आज मामा सोन के वंशज शहर में बाँस की टोकरियाँ, तार के छींके और लकड़ी के तोते-चिड़ियाँ आदि बनाकर बेच रहे हैं। सुना है, उनके इलाके में कोई बड़ा बाँध बन रहा है जिससे देश की बड़ी तरक्की होगी। मामा सोन के वंशजों और शिष्यों को जंगल से निकाल दिया गया है।

स्वयं प्रकाश (1947-2019): हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार एवं उपन्यासकार थे। कई महत्वपूर्ण किताबों का हिन्दी अनुवाद। वे हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में साठोत्तरी पीढ़ी के बाद के जनवादी लेखन से सम्बद्ध रहे।

सभी चित्र: शुभम लखेरा: स्वतंत्र चित्रकार हैं। गवर्नमेंट फाइन आर्ट कॉलेज, ग्वालियर से पेंटिंग में स्नातक। रियाज़ अकादमी, भोपाल से इलस्ट्रेशन का कोर्स। पिछल 6 सालों से बाल पत्रिकाओं के लिए चित्रकारी कर रहे हैं। डकबिल, तूलिका, चाइल्ड फंड इंडिया, एनसीईआरटी, नवनीत, एकलव्य, एलएलएफ, रूम टू रीड जैसे कई प्रकाशनों के साथ काम किया है। फिलहाल, अपने शहर चंदेरी, म.प्र. में रह रहे हैं।

सवालीराम

सवाल: पुरुषों के कुर्ते में बटन दाईं तरफ और महिलाओं के कुर्ते में बटन बाईं तरफ क्यों होते हैं?

संदर्भ के पिछले अंक में पूछे सवाल के लिए पाठकों की ओर से कुछ जवाब मिले हैं। वैसे तो मुद्दा पहनावे से सम्बन्धित है। जन सामान्य के कपड़ों में भी समय-समय पर बदलाव होते रहे हैं। जो पेंट-शर्ट, साड़ी, ब्लाउज़, सलवार, टी-शर्ट आदि आज सामान्य माने जाते हैं, हो सकता है 400 साल पहले मुगल काल में जन सामान्य द्वारा पहने ही न जाते हों। भारत में आदिम मानव काल से लेकर मौजूदा समय तक किस्म-किस्म के पहनावे और विविध सामग्री से बने वस्त्र दिखाई देते हैं। शायद इन पहनावों पर एक स्वतंत्र लेख हो सकता है।

यहाँ दो बिन्दुओं पर ध्यान दीजिए। पहला, जब कपड़ों को सिलवाए बिना पहनने का चलन था तब कपड़ों को शरीर पर लपेटा और बाँधा जाता था। उस समय लपेटने और गाँठ बाँधने के कई तरीके होते होंगे। दूसरा, जब कपड़ों को काट-छाँटकर कद-काठी के मुताबिक विविध पहनावों का चलन शुरू हुआ तो सिले गए कपड़ों पर डोरियाँ, काज-बटन आदि की शुरुआत हुई होगी। इन बटनों या डोरियों को मर्दों की ज़रूरतों, औरतों की ज़रूरतों, दाहिना हाथ प्रधान या बायाँ हाथ प्रधान को ध्यान में रखकर डिज़ाइन किया गया होगा, ऐसा यकीनी तौर पर नहीं कहा जा सकता।

यहाँ यह मानकर भी चल सकते हैं कि कुछ सवालों के कोई एक मतैण पुख्ता जवाब नहीं हो सकते। इसलिए जो भी तर्क लगाकर जवाब दिए जा रहे हैं, उनका आनन्द लेना चाहिए। बस, एक बात पर गौर कीजिए - क्या आपने किसी ऐसी रेडिमेड कपड़ों की दुकान या किसी टेलर मास्टर को देखा है जो आपसे पूछता हो कि "जनाब, दाहिना हाथ ज़्यादा इस्तेमाल करते हैं या बायाँ हाथ?" और फिर कपड़े दिखाता हो या सिलता हो?

खैर, हम हमारे पाठकों और हमारे सम्पादकीय सहयोगी की राय से आपको अवगत करवा रहे हैं।

जवाब 1: अधिकतर लोग दाहिने हाथ से काम करते हैं, इसी वजह से पुरुषों के कुर्ते में दाईं तरफ बटन लगे होते थे। और इसलिए भी चूँकि पुरुष स्वयं

कपड़े पहन लेते थे। जबकि महिलाओं के कपड़ों में बाईं तरफ बटन होते थे क्योंकि उन्हें दूसरी महिलाएँ कपड़े पहनाती थीं, इसलिए सामने से बटन लगाते वक्त बाईं ओर बटन का होना सही होता होगा।

दिलीप कुमार यादव
विकासखण्ड केसला, मप्र

सम्पादकीय टिप्पणी- *क्या सचमुच नौकरों की सुविधा का इतना खयाल रखा जाता होगा? उन नौकरों को तो कोई कपड़े नहीं पहनाता होगा और महिला नौकर के कपड़ों में भी बटन बाईं तरफ ही होते थे।*

जवाब 2: महिलाएँ अपने बच्चे को गोदी में आसानी-से लेने के लिए बाएँ हाथ का इस्तेमाल करती थीं/हैं, ऐसे में महिलाओं के कुर्ते में बटन बाईं तरफ लगा दिया गया ताकि वे अपने दाहिने हाथ से कुर्ते के बटन खोलकर बच्चे को फीड करा सकें।

राजा ठाकुर, एकलव्य, केसला, मप्र

सम्पादकीय टिप्पणी- *क्या लगता है, इतनी रिसर्च करके यह निर्णय लिया गया होगा?*

जवाब 3: चूँकि पुरुषों को महिलाओं से अधिक योग्य मना जाता है, जिस प्रकार शरीर का दायाँ अंग बड़ा और बायाँ अंग छोटा माना जाता है और दाएँ हाथ से शुभ काम किए जाते हैं तथा बाएँ हाथ से सभी अशुभ कार्य किए जाते हैं – बस यही कारण है कि पुरुषों के कुर्ते में दाईं तरफ बटन लगे होते हैं और महिलाओं के कपड़ों में बाईं तरफ बटन लगे होते हैं।

(सम्पादकीय टिप्पणी- *इस बात का बटन से क्या लेना-देना?)*

चूँकि शरीर के बाएँ हिस्से में हृदय होता है और महिलाओं की तुलना में पुरुषों को हार्ट अटैक ज़्यादा होता है, अतः उनके हृदय पर ज़्यादा भार न पड़े इसलिए भी पुरुषों के कुर्ते में दाईं तरफ बटन लगे होते हैं और महिलाओं के कपड़ों में बाईं तरफ बटन लगे होते हैं।

कल्पना शर्मा
मा. शि. मानगाँव
विकासखण्ड बाबई, मप्र

सम्पादकीय टिप्पणी- *तथ्य दरअसल उल्टा है। और वैसे भी बटन कहाँ लगे हैं, इससे हृदय पर भार का क्या सम्बन्ध है?*

जवाब 4: यदि हम भारतीय परम्परा को देखें तो आम तौर पर कुर्ता-पायजामा पुरुषों की पसन्दीदा वेषभूषा रही है। भारत में इसे पहले ज़्यादातर पुरुष ही

पहनते थे, अभी इसे महिला और पुरुष, दोनों पहनने लगे हैं।

खैर दोस्त, अब सवाल पर आते हैं कि पुरुषों के कुर्ते में बटन दाईं तरफ और महिलाओं के कुर्ते में बटन बाईं तरफ क्यों होते हैं?

इस सवाल का जवाब जानने के लिए हमें भारत से दूर इंग्लैंड की ओर जाना होगा।

इंग्लैंड के राज घरानों में रानी, महारानी आदि के शृंगार के लिए कुछ महिलाएँ हुआ करती थीं जिन्हें 'ड्रेसर्स' के नाम से जाना जाता था। भारत में भी ड्रेसर्स होती थीं पर उस दौर में भारत में रहने वाली महिलाएँ साड़ी या घाघरा-चोली पहना करती थीं।

अब आप थोड़ा याद कीजिए कि जब कोई लड़का कुर्ते के बटन लगाता है तो वह दाएँ हाथ का इस्तेमाल करता है क्योंकी अधिकतर लोग रोज़मर्रा के काम करने के लिए दाएँ हाथ का ही इस्तेमाल करते हैं। उसी तरह जो ड्रेसर्स होती थीं, उनकी सुविधा के लिए रानी-महारानियों के कपड़ों में बटन बाएँ हाथ की तरफ होते थे ताकि वे अपने दाएँ हाथ से उन बटन को बन्द कर पाएँ। तब से ही यह चलन चला आ रहा है।

निशा राजसिंह, भोपाल, मप्र

सम्पादकीय टिप्पणी- *ज़्यादा ही दूर की कौड़ी लगती है, नहीं? और जैसे पहली टिप्पणी में ज़िक्र किया है कि क्या सचमुच सहायकों/ड्रेसर्स का इतना खयाल रखकर यह तय हुआ होगा? और उन सहायकों के कपड़ों का क्या?*

जवाब 5: स्त्रियों को वाम कहा जाता है, पत्नि को वामांगिनी *(टिप्पणी- इस बात का बटन से क्या लेना-देना?)*। वाम का अर्थ बायाँ होता है। स्त्री और पुरुष की कमीज़ के अन्तर को बताने के लिए ही स्त्रियों की कमीज़ में बाईं तरफ बटन होते हैं।

हरीश गिधवानी, इन्दौर, मप्र

जवाब 6: सवाल दो खास कारणों से मज़ेदार है। पहला कारण तो यह है कि इसका जवाब किसी को पता नहीं। यानी यह उस तरह का सवाल नहीं है जैसे उल्लू को रात में दिखता है या नहीं।

इसी से जुड़ी दूसरी मज़ेदार बात है कि कोई ज्ञात कारण न होने के बावजूद पूरी नहीं तो भी लगभग पूरी दुनिया में यह परिपाटी व्याप्त है कि लड़के-लड़कियों के कुर्ते (और शायद पतलून) के बटन किस ओर लगाए जाएँगे। और तो और, बटन की जगह ज़िप का इस्तेमाल शुरू होने के बाद भी यह परिपाटी

जारी है; यह किस रूप में नज़र आती है, इसका अवलोकन आप स्वयं करके बताएँ।

खैर, जवाब पर आते हैं।

इस सवाल के जवाब की हमें अटकलें ही लगानी होंगी। जब बात अटकल की है तो सबको सही या गलत होने का हक है। लेकिन जवाब गढ़ते हुए दो बातों का ध्यान रखना होगा। पहली बात यह है कि यदि किसी तथ्य का सहारा लिया जा रहा है, तो वह तथ्य सही होना चाहिए। जैसे यदि हम यह कहें कि 'महिलाओं की तुलना में पुरुषों को हार्ट अटैक ज़्यादा आता है' तो जाँच करनी होगी कि क्या तथ्यात्मक रूप से यह बात सही है (शायद नहीं है)।

दूसरी बात यह है कि कोई अटकल कितनी तर्कसंगत लगती है और क्या किसी अन्य सन्दर्भ में उसका कोई प्रमाण मिलता है। जैसे यदि स्तनपान को आसान बनाने के लिए बटन की स्थिति तय की गई थी तो क्या यह बात मानने योग्य है कि उस ज़माने (14वीं-15वीं सदी) के दर्ज़ी इतना अनुसंधान करते होंगे? और एक सवाल यह उठता है कि क्या यह सुविधा इतनी अधिक थी कि दर्ज़ियों को (पूरी दुनिया के दर्ज़ियों को) ऐसा करना सिखाया गया?

बात शायद सिर्फ इतनी हो कि बटन के आविष्कार के बाद स्त्री-पुरुष की पोशाकें एक-सी होने लगी थीं। विपरीत दिशा में बटन लगाना शायद उनमें अन्तर करने के लिए किया गया हो और इसमें इससे अधिक गहरी कोई बात न रही हो।

खैर, जैसे भी हो, यह सवाल है मज़ेदार और इस पर खोजबीन करते रहने से न सिर्फ मज़ा आएगा (शायद जवाब भी मिल जाए), बल्कि यह हमें पोशाक जैसी साधारण-सी चीज़ों में जेंडर-आधारित अन्तरों को देखने को प्रेरित करेगी।

सुशील जोशी
सम्पादक, स्रोत फीचर्स, एकलव्य
उज्जैन, मप्र

इस बार का सवाल:

समुद्र में आने वाले तूफानों का नामकरण कैसे किया जाता है?

शिक्षक, उत्क्रमित मध्य विद्यालय, हाजीपुर, बिहार

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

कौन महिला, कौन पुरुष?

RNI No.: MPHIN/2007/20203

फोटो: निर्पेन्द्र कुमार

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर,
जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) द्वारा एकलव्य से प्रकाशित तथा
भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।